अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

सर्वोदय जगत

वर्ष-42, अंक-12, 01-15 फरवरी, 2019

गांधी की हत्या का जिम्मेवार कौन?

-जेपी

गो-वध बंदी

'मेरी अभिलाषा है कि दुनिया-भर में गो-वंश की हत्या समाप्त होनी चाहिए। इसका आरंभ हमें अपने देश से करना होगा।'

- गांधी

सर्व सेवा संघ
(अखिल भारत सर्वोदय मंडल)
द्वारा प्रकाशित

अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र
सर्वोदय जगत
सत्य, अहिंसा एवं सर्वोदय-सम्पूर्ण क्रांति का संदेश वाहक

वर्ष : 42, अंक : 12, 01-15 फरवरी, 2019

संपादक
अशोक मोती
फोन : 0542-2440223

संपादक मंडल
डॉ. रामजी सिंह **भवानी शंकर 'कुसुम'**

संपादकीय कार्यालय
सर्व सेवा संघ, साधना केन्द्र
राजघाट, वाराणसी-221001 (उ.प्र.)
फोन : 0542-2440-385/223
ईमेल : sarvodayajagat@gmail.com
Website : sssprakashan.com

शुल्क

मूल्य	:	05 रुपये
वार्षिक	:	100 रुपये
आजीवन	:	1000 रुपये

खाता संख्या : 383502010004310
IFSC No. UBIN-0538353
Union Bank of India
Rajghat, Varanasi

इस अंक में...

1. गो-वध बंदी आर्थिक मुद्दा है ... 2
2. गो-वध बंदी... 3
3. सीमांत गांधी : खान अब्दुल गफ्फार... 4
4. बापू की हत्या का जिम्मेदार कौन... 5
5. सारा भारत मेरा घर है... 9
6. गो नस्ल सुधार... 13
7. हिन्दू राष्ट्र, गाय व मुसलमान... 15
8. इस्लाम में पशु-प्रेम... 17
9. उपन्यास - 'बा'... 18
10. कविताएं... 20

संपादकीय

गो-वध बंदी आर्थिक मुद्दा है, राजनैतिक नहीं

हिन्दू राष्ट्रवादी नाथूराम गोडसे ने गांधी की हत्या को 'गांधी-वध' की संज्ञा दी और इसे जाति और देश की भलाई के लिए अपनी देशभक्ति भी माना। हिन्दू राष्ट्रवादी संगठन राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ ओर गोडसे ने इस हत्या का आधार गांधी का मुसलमानों के प्रति प्रेम, पाकिस्तान को 55 करोड़ रुपये की सहायता दिलवाने और देश का विभाजन कराना बनाया।

विदित है कि आजादी के बाद राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ का आक्रमण और भी व्यापक हो गया, जिसमें गांधी और कांग्रेस के राष्ट्रीय एकता के प्रयत्नों को बदनाम किया जाने लगा। धर्मनिरपेक्षता की भावानाओं के नेताओं को हिन्दू-विरोधी कहा जाने लगा और सांप्रदायिक एकता के पक्षधर मुस्लिम नेताओं को गालियां दी जाने लगी। उस समय इन लोगों ने जो दिल्ली में घमासान मचाया, उसका चित्रण जेपी के भाषणों में हुआ है—

''याद रखिये यह 'गांधी-वध' किसी पागल का काम नहीं था। किसी एक व्यक्ति ने उनकी हत्या नहीं की, देश में एक जमात थी, एक खास ढंग के लोग थे, जिनका हाथ इस हत्या में था।...सिर्फ महात्माजी की हत्या ही उनका उद्देश्य नहीं था, उनके बाद बड़े पैमाने पर हत्याएं करने का षड्यंत्र था। इन हत्याओं से वे दिल्ली की हुकूमत उलट देना चाहते थे। उनके आदमी हुकूमत में थे, पुलिस में थे, सिविल सर्विस में थे, सेक्रेटेरिएट में थे। वे सरेआम कहते थे कि हम वर्मा की हालत यहां भी करेंगे, गांधी और जवाहर की लाशें दिल्ली की सड़कों पर तड़पती मिलेगी।'' *(जयप्रकाश की विचारधारा...सं. रामवृक्ष बेनीपुरी, 1948)।*

देशवासियों से जेपी ने यह भी कहा था कि देश में किसी सांप्रदायिक संस्था के लिए इजाजत नहीं होनी चाहिए। जेपी ने तुरंत कानून बनाने की बात कही ताकि कोई भी संस्था एक जाति, फिरका या धर्म के नाम पर राजनीतिक क्षेत्र में काम न कर सके। मसलन इस तरह के कानून नहीं बनाये जाने के कारण आज देश की राजनति पर धर्म और सांप्रदायिकता पूरी तरह हावी हो रही है। आजादी के बाद हिन्दुत्ववादी की पहली सत्ता अटल बिहारी वाजपेयी को प्राप्त हुई। किन्तु 2014 में नरेन्द्र मोदी के सत्तासीन होने के बाद से हिन्दू राष्ट्रवाद, राम-मंदिर निर्माण, गो-रक्षा जैसे राष्ट्रवादी मुद्दों को उछालना प्रारंभ किया और इनकी आस्था हिलोरे लेने लगी। देश में जगह-जगह गो-रक्षा के नाम पर मुसलमानों की हत्याएं हुईं। फिर दलितों, आदिवासियों और विरोधी बुद्धिजीवियों को भी निशाना बनाया गया। बुलंदशहर में तो गो-रक्षकों की भीड़ द्वारा एक पुलिस अधिकारी की हत्या की गयी। सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को देश के लोकतंत्र को बचाने के लिए प्रेस कान्फ्रेंस कर आवाम को बताना पड़ा।

अब गो-हत्या बंदी जो एक आर्थिक मामला है, इसे राजनीतिक मुद्दा बना दिया गया है।

गो-सेवा के जनक तो गांधी थे, जो गो-वध रोकने को इतने कटिबद्ध थे कि 1926-27 में हिन्दू-मुस्लिम एकता के एक प्रस्ताव को लौटाते हुए कहा था, ''बेचारी गाय हमारे सहारे जी रही है, उसका बलिदान देकर मैं स्वराज्य पाने को भी तैयार नहीं हूं।...गो-रक्षा मुझे अति प्रिय है, यदि कोई मुझसे पूछे कि हिन्दू धर्म का बड़े-से-बड़ा स्वरूप क्या है, तो मैं 'गो-रक्षा' को बताऊंगा।''

इसलिए गांधी ने पशुओं की देखरेख का शास्त्रीय ज्ञान लोगों को प्रदान करने पर बल दिया था और राज्य के लिए भी कतिपय कर्तव्य निर्धारित किये थे, जिनमें राज्य द्वारा दूध क्रय करने, दूधालय चलाने, चर्मालय खोलने, खाद बनाने तथा गोचर भूमि की व्यवस्था आदि कार्यक्रम शामिल थे। विनोबा ने गोहत्या बंद करने के लिए 11 जनवरी 1982 से देवनार, मुंबई के कत्लखाने में पिछले कुछ वर्ष पूर्व तक पूर्णतः अहिंसक, अराजनैतिक एवं असांप्रदायिक सत्याग्रह चलाया, जिसमें हिन्दुत्ववादी संगठनों कभी कोई योगदान नहीं रहा।

सवाल है कि गो-प्रेम रखने वाली प्रचंड जनादेश से सत्ता में आयी भाजपा सरकार इन वादों को पूरा क्यों नहीं की? भाजपा की सरकार चाहती तो पूरे देश के लिए एक कानून बनाकर और विदेशों को गोमांस के निर्यात को बंद कर गो-हत्या बंद कर सकती थी। यदि भाजपा विश्व हिन्दू परिषद, बजरंग दल जैसे संगठन, जिनका गांधी के अहिंसा और अहिंसक सत्याग्रह में विश्वास नहीं है, को गो-वध बंदी आंदोलन चलाने की इजाजत देती है, तो देश में गंभीर सांप्रदायिक तनाव की स्थिति पैदा हो सकती है।

इसलिए उचित तो यह होगा कि भाजपा सरकार देश के प्रमुख विचारक, संविधान वेत्ता, सभी राजनीतिक दलों के नेता और मान्य धर्माचार्य के आपसी विमर्श से सर्वसम्मत हल निकाले। गो-वध बंदी को आर्थिक मुद्दा ही रहने दे, राजनैतिक नहीं बनाये। **–अशोक मोती**

गो-वध बंदी

❑ गांधी

मैं इस बात पर जोर देना चाहता हूं कि कानून बनाकर गोवध बंद कराने से गोरक्षा नहीं हो जाती। वह तो गोरक्षा के काम का छोटे-से-छोटा भाग है।...लोग ऐसा मानते दीखते हैं कि किसी भी बुराई के विरुद्ध कोई कानून बना कि तुरंत वह बिना किसी झंझट के मिट जायेगी। ऐसी भयंकर आत्म-वंचना और कोई नहीं हो सकती। किसी दुष्ट बुद्धि वाले अज्ञानी या छोटे-से समाज के खिलाफ कानून बनाया जाता है और उसका असर भी होता है। लेकिन जिस कानून के विरुद्ध समझदार और संगठित लोकमत हो, या धर्म के बहाने छोटे-से-छोटे मंडल का भी विरोध हो, वह कानून सफल नहीं होता। गोरक्षा के प्रश्न का जैसे-जैसे मैं अधिक अध्ययन करता जाता हूं, वैसे-वैसे मेरा यह मत दृढ़ होता जाता है कि गांवों और उनकी जनता की रक्षा तभी हो सकती है, जब कि मेरी ऊपरी बतायी हुई दिशा में निरंतर प्रयत्न किया जाय।

प्रत्येक किसान अपने घर में गाय-बैल रखकर उनका पालन भलीभांति और शास्त्रीय पद्धति से कर सकता। गोवंश के ह्रास के अनेक कारणों में व्यक्तिगत गोपालन भी एक कारण रहा है। यह बोझ वैयक्तिक किसान की शक्ति के बिलकुल बाहर है।...

हमारी आबादी बढ़ती जा रही है और उसके साथ किसान की व्यक्तिगत जमीन कम होती जा रही है। नतीजा यह हुआ कि प्रत्येक किसान के पास जितनी चाहिए उतनी जमीन नहीं है। ऐसा किसान अपने घर में या खेत पर गाय-बैल नहीं रख सकता। रखता है तो अपने हाथों अपनी बरबादी को न्योता भी देता है। आज हिन्दुस्तान की यही हालत है। धर्म, दया या नीति की परवाह न करने वाला अर्थशास्त्र तो पुकार-पुकार कर कहता है कि आज हिन्दुस्तान में लाखों पशु मनुष्य को खा रहे हैं। क्योंकि उनसे कुछ लाभ न पहुंचने पर भी उन्हें खिलाना तो पड़ता ही है। इसलिए उन्हें मार डालना चाहिए। लेकिन धर्म कहो, नीति कहो या दया कहो, ये हमें इन निकम्मे पशुओं को मारने से रोकते हैं।

इस हालत में क्या किया जाय? यही कि जितना प्रयत्न पशुओं को जीवित रखने और उन्हें बोझ न बनने देने का हो सकता है, उतना किया जाय। इस प्रयत्न में सहयोग का बड़ा महत्त्व है। सहयोग अथवा सामुदायिक पद्धति से पशुपालन करने से अनेक लाभ हैं। मेरा तो विश्वास है कि हम अपनी जमीन को (भी जब) सामुदायिक पद्धति से जोतेंगे, तभी उससे पूरा फायदा उठा सकेंगे। गांव की खेती अलग-अलग सौ टुकड़ों में बंट जाय, इसके बनिस्बत क्या यह बेहतर नहीं होगा कि सौ कुटुम्ब सारे गांव की खेती सहयोग से करें और उसकी आमदनी आपस में बांट लिया करें? और जो खेती के लिए सच है, वह पशुओं के लिए भी सच है।

यह दूसरी बात है कि आज लोगों को सहयोग की पद्धति पर लाने में कठिनाई है। कठिनाई तो सभी सच्चे और अच्छे कामों में होती है। गो-सेवा के सभी अंग कठिन हैं। कठिनाइयां दूर करने से ही सेवा-मार्ग सुगम बन सकता है। यहां तो मुझे इतना ही बताना था कि...वैयक्तिक पद्धति गलत है, सामुदायिक सही है। व्यक्ति अपनी स्वातंत्र्य की रक्षा भी सहयोग को स्वीकार करके ही कर सकता है। अतएव सामुदायिक पद्धति अहिंसात्मक है, वैयक्तिक हिंसात्मक। ❑

भारत तीसरा सबसे बड़ा बीफ निर्यातक

संयुक्त राष्ट्रसंघ। भारत विश्व का तीसरा सबसे बड़ा बीफ (गाय का मांस) निर्यातक देश है और वह अपनी यह स्थिति अगले दशक तक बनाये रखेगा। खाद्य एवं कृषि संगठन (एफएओ) और आर्थिक सहयोग संगठन (ओईसीडी) की एक रिपोर्ट में यह जानकारी दी गयी है।

ओईसीडी-एफएओ कृषि परिदृश्य 2016-2017 रिपोर्ट जारी की गयी। भारत ने पिछले वर्ष 15.6 लाख टन बीफ का निर्यात किया था। उम्मीद की जा रही है कि भारत विश्व में तीसरे सबसे बड़े बीफ निर्यातक की अपनी यह स्थिति बनाये रखेगा। भारत 2026 में 19.3 लाख टन के निर्यातक के साथ विश्व के 16 प्रतिशत बीफ का निर्यातक होगा। हालांकि निर्यात होने वाले बीफ के प्रकार को स्पष्ट नहीं किया गया है, लेकिन ज्यादातर निर्यात होने वाला मांस भैंसों का रहा है।

× × ×

गाय को राष्ट्रीय पशु घोषित करने का प्रस्ताव नहीं

नई दिल्ली। गाय को राष्ट्रीय पशु घोषित करने के लिए सरकार को कोई प्रस्ताव नहीं मिला है। गृह मंत्रालय ने लोकसभा के पिछले सत्र में यह जानकारी दी। लोकसभा में पी नागराजन और रंजनबेन भट्ट के प्रश्न के लिखित उत्तर में गृह राज्यमंत्री किरण रिजिजू ने बताया, इस सिलसिले में गृह मंत्रालय को कोई प्रस्ताव नहीं मिला है, न ही कोई मांग की गयी है। *(गोग्रास : अकटूबर 2017)*

6 फरवरी : खान अब्दुल गफ्फार खाँ-जयंती : विनम्र स्मरण

सीमांत गांधी : खान अब्दुल गफ्फर खाँ

खान अब्दुल गफ्फार खाँ का जन्म उतमानजई (पेशावर) में सन् 1890 में एक मध्यम वर्गीय परिवार में हुआ था। इनको लोकसेवा की शिक्षा-दीक्षा अपने माता-पिता से मिली। इनके हृदय में बचपन से ही सेवा की भावना पैदा हुई थी। वे अपने गांव के गरीब बच्चों से खेलते थे। गरीब बच्चों को अपना दोस्त व मित्र बना लेते थे। यही भावना अंत में उनके जीवन की विशेष चीज हो गयी। सादगी, सत्य और शांति उनके जीवन की खास चीज है। वे बनावट को कभी भी पसंद नहीं करते। इनमें नेताओं की तरह शान-शौकत नहीं है—सादा लिबास, मामूली खुराक और साफ बातें। वे कहते कम हैं और कार्य अधिक करते हैं। इसीलिए वे जब दिल्ली आये और उन्होंने भाषण किया तो बोले कि जिस देश के लोग भाषण ज्यादा करते हैं और काम कम, तब उस देश का विकास रुक जाता है।

वे जवान हुए तभी से समाज-सेवा के काम में रुचि लेने लगे। बादशाह खान ने अपने राजनीतिक जीवन की शुरुआत पाठशालाएं खोलने से शुरू की। उन्होंने अपने गांव में आजाद स्कूल की बुनियाद रखी। यही वह स्कूल था जहां के विद्यार्थियों ने स्वतंत्रता आंदोलन में बढ़-चढ़कर भाग लिया। पाठशालाओं के खुलने से फिरंगी का शासन डोलने लगा। बादशाह खान गिरफ्तार कर लिये गये और तीन वर्ष के लिए कारावास में भेज दिये गये। यह उनकी पहली गिरफ्तारी थी। इसके बाद तो जेल उनका घर ही बनता चलता गया। उनका एक पांव जेल में होता था और दूसरा पांव जेल के बाहर। जब वे पहली सजा काटकर जेल से बाहर आये तो उन्होंने विचार किया पठानों का संगठन किया जाय। उन्होंने सन् 1929 में खुदाई खिदमतगार जमात की बुनियाद रख दी। सन् 1930 में उन्होंने खुदाई खिदमतगार के नाम से कार्य आरंभ किया। खुदाई खिदमतगार थोड़े ही दिनों में गांव-गांव

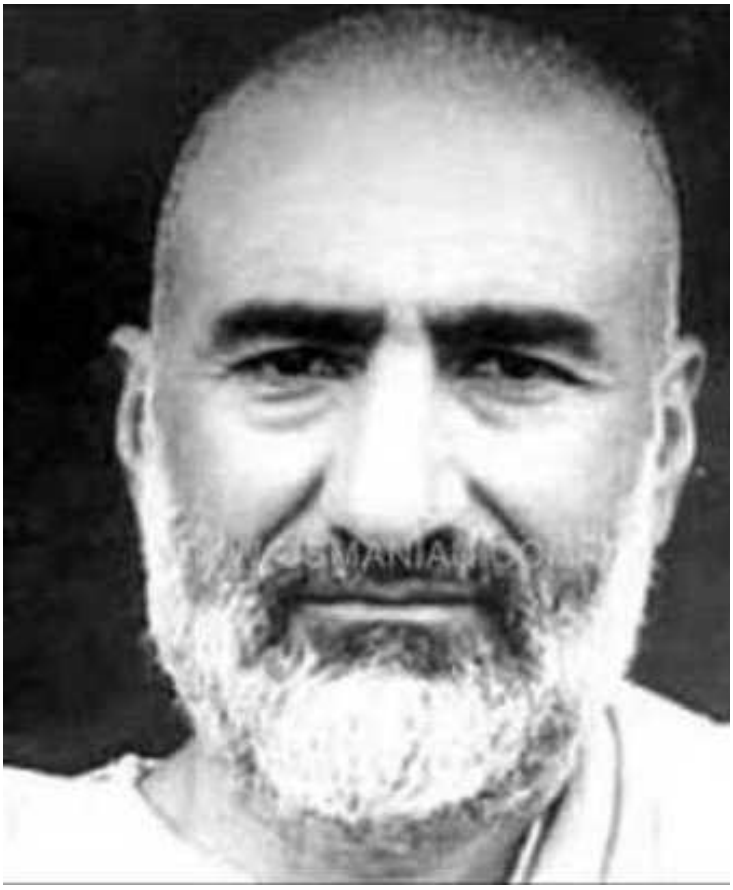

तक फैल गये। अंग्रेज सरकार को इससे बड़ा भय हुआ और खुदाई खिदमतगार जेल में डाल दिये गये। इसी समय पख्तूनों का संबंध कांग्रेस से हुआ। खुदाई खिदमतगार कांग्रेस से मिलकर उत्साह से कार्य करने लगे।

बादशाह खान की सबसे अनोखी बात यह थी कि उन्होंने लड़ाके पठानों से बंदूक छुड़वा दी। उन्होंने अहिंसा का मार्ग अपना लिया। इसके पहले पठान अहिंसा का नाम भी नहीं जानते थे। वे हिंसा के पुजारी थे। वे जेल से डरते थे। बादशाह खान ने गांधीजी से मिलने के बाद अहिंसा की शिक्षा दी तो पठानों ने उसे अपना धर्म बना लिया। उन्होंने स्वतंत्रता आंदोलन में अहिंसा को ही अपना हथियार बनाया। इस प्रकार गांधीजी के असर ने इन्हें अहिंसक बनाया। और उन्होंने कांग्रेस के साथ मिलकर स्वतंत्रता की लड़ाई लड़ी। बादशाह खान वर्षों जेल में रहे।

वे गांधीजी के अनुयायी थे और आज भी वे गांधीजी के अनुयायी हैं। इसीलिए तो आज जब वे भारत आये तो उन्हें इस बात का बड़ा दुःख हुआ कि भारत गांधीजी को भूल गया।

वे सब धर्मों को प्रेम की दृष्टि से देखते हैं। गीता का उन्होंने अध्ययन किया है। गांधीजी के बाद अगर यह कहा जाय कि खान अब्दुल गफ्फार खाँ गांधीजी के दूसरे स्वरूप हैं तो गलत न होगा।

('गांव की आवाज' से साभार) ❑

12 फरवरी सर्वोदय दिवस पर विशेष

बापू की हत्या का जिम्मेदार कौन?

❑ जयप्रकाश नारायण

यह आलेख गांधी की हत्या के बाद दिल्ली में जेपी के भाषणों पर आधारित है, जो रामवृक्ष 'बेनीपुरी' द्वारा संपादित पुस्तक 'जेपी की विचारधारा' से उद्धृत तथा देश की वर्तमान परिस्थिति में बिल्कुल सामयिक है। –सं.

पिछले महीनों में हमारे देश में जो दुर्घटनाएं हुई हैं, वैसी दुर्घटनाएं हमारे देश के इतिहास में क्या दुनिया के किसी देश के इतिहास में नहीं हुई थी। हाल ही में देश ने आजादी हासिल की थी कि उसके सर पर संकट के पहाड़ टूट पड़े। बड़े-बड़े संकट आये, झगड़े-फसाद, खून-गारत क्या-क्या न देखने पड़े हैं हमको। एक बाजाप्ता लड़ाई भी कई महीनों से चल रही है। इन मुसीबतों से सारा मुल्क दबा जा रहा था कि अचानक एक ऐसी बड़ी मुसीबत आ गयी, जिससे देश की कमर टूट-सी गयी है। अभी हम उठकर खड़े हुए थे, कदम बढ़ा रहे थे कि गाज गिरी और हमें सर पर हाथ रखकर बैठ जाना पड़ा। अब हम किस तरह फिर खड़े होंगे, कैसे आगे बढ़ेंगे, किस रास्ते से जायेंगे। सारे देश के हृदय में यही प्रश्न उठ रहा है। किन्तु इसका जवाब आसान नहीं। जो कुछ देश ने किया, उस पर पानी फिर जायेगा। साठ साल की तपस्या, त्याग, कुर्बान व्यर्थ जायेंगी, यदि हमने आगे का रास्ता नहीं ढूंढ़ निकाला। चोट खाकर भी हमें संभलना है, कर्तव्य को निभाना है, सही रास्ते पर जाना है। देश पर जो मुसीबतें आयीं, वे क्यों आयीं, कैसे आयीं—इसे समझना सबके लिए जरूरी है। जो हुआ, सो हुआ। आगे हमारी मुसीबतें आपसे आप बंद हो जायेंगी, यदि हम ऐसा समझते तो यह भूल होगी। दुश्मन घर में है और उसने अपनी जड़ बहुत नीचे तक जमा रखी है। उस दुश्मन को पहचानना है और उसे जड़ से उखाड़ कर खत्म करना है।

कोई अमर होकर नहीं आया। महात्माजी कहते थे कि वह 125 साल तक जीना चाहते हैं। वह जीना चाहते थे दुनिया के मजे लूटने के लिए नहीं। और नेताओं ने घर जमीदारियां हैं—रुपये-पैसे हैं। उनके लिए अच्छे-अच्छे पद हैं, बजारत हैं; किन्तु गांधीजी ने तो घर को भी छोड़ रखा था, बाल-बच्चों को छोड़ रखा था। पद का सपना भी वह देख नहीं सकते थे। वह जीना चाहते थे तो देश के लिए, देश की सेवा के लिए, किन्तु ऐसे वक्त पर वह चले गये, जबकि उनकी सबसे ज्यादा जरूरत थी। यों तो ऐसे भी बहुत-से लोग हैं, जिन्होंने उनके चरणों में बैठकर सीखा था, वे भी कहते थे—'अब महात्माजी संन्यास ले लें, राजनीति में दखल न दें, राजनीति के सिद्धांत कुछ जुदे होते हैं; वह महात्मा हैं, राजनीति के दांव-पेंच वे क्या जानें। किन्तु आप लोगों का ध्यान तो गांधीजी पर लगा था। आजादी हिन्दुस्तान की सरकार किसकी हो, गांव कैसे हो, शहर कैसे बसाये जायें, उद्योग-धंधों की उन्नति किस तरह हो, किस तरह की शिक्षा हो, हमारा आपस का बर्ताव कैसा हो—इन सारी बातों में जनता गांधीजी ही की तरफ देखती थी। इस मौके पर यही देश को राह बता सकते थे। देश को ही नहीं दुनिया को राह दिखाना था उन्हें। इस दुनिया में जहां पशुता का ही बड़ा बल समझा जाता है, जहां हथियार और फौज ही सबसे बड़ी शक्ति समझी जाती है, आज उनकी जरूरत सब दिनों से ज्यादा भी, तभी वह चले गये। जिस तरह लोग जाते हैं, वह भी चले गये होते, उनकी प्राकृतिक मृत्यु हुई होती, तो भी हिन्दुस्तान को दुःख होता, तब भी यह कमी पूरी नहीं हो सकती थी। किन्तु यह जिस तरह गये, उसने हमारे शोक को और बढ़ा दिया है, हमारी क्षति को अपूरणीय कर दिया है, किन्तु हमें सिर्फ रोना नहीं है। जिन व्यक्तियों के हाथ उनका बलिदान हुआ, हमें उन्हें पहचानना है और उन्हें किस तरह पछाड़े, शिकस्त दें, यह करना है। हम अंग्रेजों से लड़े, उन्हें हराया, गुलामी से छुटकारा पाया, किन्तु शत्रु नये ढंग का है। इन नये शत्रुओं का मुकाबला कैसे किया जाये, यही सवाल है। अंग्रेजों को भी हिम्मत नहीं हुई थी कि उनकी शान के खिलाफ बंद करें, उन्हें गिरफ्तार भी किया गया, तो कभी उनके हाथ में हथकड़ियां नहीं डाली गयी, जेल में भी ले गये, तो इज्जत से ले गये, उसी महात्मा की हत्या एक हिन्दुस्तानी के हाथ से हो जाये, क्या यह आश्चर्य की बात नहीं मालूम पड़ती?

याद रखिये, यह किसी पागल का काम नहीं था। किसी एक व्यक्ति ने उनकी हत्या नहीं की। देश में एक जमात थी, एक खास ढंग के लोग थे, जिनका हाथ इस हत्या में था। गांधीजी ने हमें बहुत-सी बातें सिखायी थीं। कुछ पर हमने ध्यान दिया, कुछ को अनसुनी कर दिया। दिल्ली से प्रतिदिन प्रार्थना में कितनी बातें बताते थे वे हमें। किन्तु कितने लोग उन पर ध्यान देते थे। तो भी यह हमें बताते जाते थे। किन्तु, वह हमें यह नहीं बता सके कि जो लोग हमारी आजादी को बर्बाद कर देना चाहते हैं, उनसे हम किस तरह से बचें। जो उनकी जिन्दगी से नहीं सीख सके, अब हम उनकी कुर्बानी से तो सीखें। तीन महीने पहले मैंने अपने एक

भाषण में कहा था कि देश में एक अजीब ताकत पैदा हो गयी है। इस ताकत ने दिल्ली में दस दिनों तक गजब मचा रखा था। वह मुसलमानों की ताकत नहीं थी। वे तो पनाह मांग रहे थे—भागे जा रहे थे। खतरा था उन हिन्दुओं से, उन सिक्खों से, जिन्होंने लूटमार मचा रखी थी, जिन्होंने यह प्रतिज्ञा कर रखी थी कि इस हुकूमत को जनता के हाथों से, जनता के प्रतिनिधियों के हाथों से छीन लेंगे। वे सरेआम कहते थे कि हम वर्मा की हालत यहां भी करेंगे; गांधी और जवाहर की लाशें दिल्ली की सड़कों पर तड़पती होंगी। मैंने आपको उन दिनों आगाह किया था और आपको बताया था कि आजादी की लड़ाई क्यों लड़ी गयी। गरीबों की तकलीफ दूर हो, जनता का राज हो, भूखों को अन्न मिले, फटे हालों को कपड़े मिलें, बीमारों को दवा मिले, स्कूल-कॉलेज खुलें, कृषि और उद्योगों की तरक्की हो। आजादी की लड़ाई इसलिए लड़ी गयी थी। हमारे देश में उलटी गंगा बह रही है; मेहनत करने वाले तो भूखों मरते हैं और बैठे-ठाले लोग मौज करते हैं, सेवा करते हैं। ऐसा राजतंत्र, ऐसा आर्थिक-तंत्र देश में हो, जिसमें मेहनत का बंटवारा न्याय के अनुसार हो। आजादी की लड़ाई अलवर ने, ग्वालियर ने या पूंजीपतियों और करोड़पतियों ने नहीं लड़ी। वे तो अंग्रेजों के जूते फाड़ते रहे। लड़े गरीब, तो राज भी गरीब का होना चाहिए। यही समस्या है। सबसे बड़ी समस्या। एक इन्कलाब हो चुका है, दूसरा इन्कलाब होना चाहिए। राज में क्रांति हो चुकी है, अब समाज में क्रांति होनी चाहिए। एक ऐसा समाज बनाना चाहिए, जिसमें नीच-ऊंच का भेद न रहे; कोई राजा और कोई रंक न हो। यह काम अंग्रेजी राज के हटाने से भी बड़ा काम है; किन्तु, यह होके रहेगा। दूसरा इन्कलाब भी जल्द आने वाला है। कांग्रेस तो कोई सोशलिस्ट संस्था नहीं। उसकी भी आर्थिक समिति की रिपोर्ट से जो सूरत निकली है, आपने देखा होगा, उसमें भी समाजवाद है, जिससे कलकत्ता और बंबई के पूंजीपतियों के झुंड में तहलका मच गया है और वे तार-पर-तार दिल्ली भेज रहे हैं।

यह जो शक्तियां इन्कलाब से घबराती हैं, उनके पास अंग्रेजों की तरह के कोई साधन नहीं कि जनता का मुकाबला कर सकें। ये राजे, ये नवाब, ये सेठ, ये साहूकार क्या खाकर जनता का सामना कर सकेंगे? उनके पास न फौज है, न कोई शासन-तंत्र है, इसलिए इन्होंने कुछ ऐसे उपाय सोच निकाले हैं कि जिनसे इनकी रक्षा हो सके। इन्कलाब से हमी सबक नहीं लेते हैं, जनता के दुश्मन तो सबक लेते हैं। वे देखते हैं कि बहुमत गरीबों का है। गरीबों का स्वार्थ एक है, उनकी तकलीफें एक हैं और उन तकलीफों को दूर करने का तरीका भी एक है। यह तरीका है, जनता का जबर्दस्त संगठन। जब सब गरीब एकत्र हो जायेंगे, हमारी सत्ता छीन लेंगे, हमारे राज-पाट, बैंक, कारखाने सब पर कब्जा कर लेंगे। इसलिए कोई ऐसा रास्ता निकालो कि गरीब एक न हो सकें। अंग्रेजों से उन्होंने सबक लिया है। हम आपस में झगड़ रहे थे कि अंग्रेज आ गये और इस झगड़े को हमेशा बढ़ाते रहे और वे तब तक बने रहे, जब तक हम एक न हो गये। कांग्रेस ने सबको एक किया। अब वे सरमायेदार जागीरदार यह चाह रहे हैं कि उस एकता को तोड़ दें—जनता को आपस में लड़ा दें। ऐसी हालत पैदा कर दें कि हिन्दू किसान, मुसलमान किसान का गला काटे, पठान मजदूर सिक्ख मजदूर के पेट में छुरा भोंक दें। यही नहीं, बंगाल-बिहार का झगड़ा, जो उनकी ओर बढ़ी आ रही है, वह पथ-भ्रष्ट हो जाये। उद्देश्य को भूलकर बीच में उलझ जाये। मैंने आपको कहा था कि वह जहर हटाइये। मुस्लिम लीग के नेतृत्व और अंग्रेजों के षड्यंत्र से देश के तीन टुकड़े हो गये हैं। यदि हमने उन्हें नहीं रोका; तो जनता के राज की बात तो दूर देश 300 टुकड़ों में बंट जायेगा। एक हिन्द राष्ट्र नहीं हो सकता। जब हिन्दू राज्य होगा, तो सिक्ख राज्य क्यों नहीं? बौद्ध, जैन, पारसी, आदिवासी इनके भी अलग-अलग राज्य क्यों न बनेंगे? फिर हिन्दुओं में भी किनका राज्य? राजपूतों का राज्य, जाटों का राज्य, ब्राह्मणों का राज्य किनका-किनका राज्य? भरतपुर के जाट दिल्ली पर आंख गड़ाये हुए हैं। राजपूताने में राजपूतों का राज, किन्तु वहां भी उदयपुर का राज्य या जयपुर का राज्य? और, मराठों का राज्य हो तो शिवाजी के देश-घर कोल्हापुर वालों का राज्य या बड़ौदा अथवा ग्वालियर का राज्य? याद रखिये, इन राजाओं में देश की भक्ति नहीं है। इनका अपना-अपना स्वार्थ है। होड़ लगेगी और फैसले के लिए कोई गोलमेज कान्फ्रेंस नहीं बैठेगी, तलवार से फैसले होंगे, खून की नदी बहेगी, देश सैकड़ों टुकड़ों में बंट जायेगा और हमारी वही हालत होगी, जो मुगल सल्तनत के बिगड़ने पर हुई। फिर? गुलामी को आने से भी हम नहीं रोक सकेंगे, हम गुलाम होकर रहेंगे।

जिस समय मैंने ये बातें कहीं, उस समय अखबारों ने मेरी खिल्ली उड़ाई, नेताओं ने मुझपर फब्तियां कसी; किन्तु जिनके दिमाग के दरवाजे बंद थे, अब खुल जाने चाहिए। यदि सांप्रदायिकता रही, तो हम आगे बढ़ नहीं सकते। भिन्नताओं की हममें कमी नहीं। भिन्नताओं को अलग करके ही हमने आजादी हासिल की। इन भिन्नताओं को दया कर ही हम उसे कायम रख सकते हैं। लोहार लोहे को गरम करे, पीट करके, तब तलवार या हल बनाता है। यदि हमने यह नहीं किया, तो महात्माजी का बलिदान निष्फल जायेगा। सबसे पहले हम हिन्दुस्तानी हैं, उसके बाद हिन्दू या मुसलमान, बिहारी या बंगाली। जब तक हम ऐसा नहीं सोचते, तब तक देश बच नहीं सकता। तब तक हमारा कोई भविष्य नहीं। यही महात्माजी बार-बार कहते रहे और अपनी शानदार शहादत द्वारा चलते-चलते फिर अंत में उन्होंने हमें यही बताया है। 15 अगस्त के बाद हम कई कदम पीछे हो गये हैं, आर्थिक दृष्टि से और राजनीतिक दृष्टि से भी। दुनिया में जो हमारी इज्जत थी, उसे भी हमने धूल में मिलाया है। यह खुशी की बात है कि हुकूमत की भी आंखें खुली हैं और उसने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और उनकी तरह की दूसरा फिरकापरस्त जमातों को गैर-कानूनी करार दिया है। हम पहले से ही आगाह कर रहे थे, किन्तु देश के नेताओं ने

ध्यान नहीं दिया। यहां बिहार राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की रैली हुई और उसमें कई वजीर तक गये। ऊपर से देखने पर तो कवायद अच्छी लगती ही है। किन्तु असल चीज थी उनकी अंदरूनी सर्किल। उस सर्किल में लेकर तब वे भेद बताते थे। हमने ये बातें जनता के सामने रखी, कांग्रेस के सामने रखी, किन्तु दुश्मन हुकूमत के साये में पलता रहा, बढ़ता रहा। हुकूमत बदलने को सबको हक है; किन्तु उसका तरीका क्या हो? सावरकर या गोडसे जनता से कहें कि यह खराब राज है। जब चुनाव हो, तो जनता से कहें कि वह उन्हें ही वोट दे और जनता यदि हत्यारों का ही राज चाहे, उन्हें ही वोट दे, तो यही सही। आखिर लोग आत्महत्या भी तो करते ही हैं। यदि जनता आत्महत्या ही करना चाहे, तो उसे कौन रोक सकता है। किन्तु जब सैकड़े निनानवे लोग नेहरू का राज चाहते हैं, तब सैकड़े एक बम-पिस्तौल से इस राज को उलटाना चाहें, यह तो देश के साथ, जनता के साथ गद्दारी है। अंग्रेजों के खिलाफ हममें से कुछ ने पिस्तौल चलाये, बम फेंके, क्योंकि वह राज जनता की इच्छा के खिलाफ देश पर लादा गया था। इसलिए हमें यह हक था कि उसे उलट दें। किन्तु जो राज प्रजा की इच्छा से कायम हुआ, उसके साथ यह सलूक करना तो प्रजाविद्रोह है, प्रजा के साथ गद्दारी है। ऐसा राज प्रजा-राज नहीं कहा जा सकता, वह तो कातिलों का राज होगा, चाहे ऐसे लोग राजा हों या नवाब, पूंजीपति हों या करोड़पति।

दिन-दिन यह खतरा बढ़ता जा रहा था। हम गला फाड़-फाड़कर चिल्ला रहे थे। आखिर कांग्रेस का ध्यान इस ओर गया और दिल्ली में अब अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक हुई, तो उसमें राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के खिलाफ प्रस्ताव पास हुआ। उस प्रस्ताव को खुद गांधीजी ने अपने हाथों से लिखा था और बताया था कि वह संघ देश के लिए मिनेस है, खतरा है। किन्तु तीन महीने हो गये केन्द्रीय सरकार ने या सूबाई हुकूमतों ने उसे दबाने के लिए क्या किया? कांग्रेस की संस्था सर्वव्यापी है, गांव-गांव तक उसकी पैठ है। प्रांतीय सरकारों और कांग्रेस संस्थाओं ने उस तरह काम किया होता, जैसा हमने किया, तो शायद हमने महात्माजी को नहीं गंवाया होता। मैंने पूना में, जहां इस संघ का गढ़ है और जहां इसके गुरुजी का घर है, हेडगेवार साहब जो हिटलर से सीखकर आये थे, उनके घर में भी खुलेआम संघ की भर्त्सना की। मेरे पास संघ वालों ने धर्म के खत भेजे, लेकिन मैं सब जगह गया और बोलता रहा; किन्तु कांग्रेस के कुछ नेताओं ने, कुछ वजीरों तक ने कहा कि यह तो देशप्रेमियों की संस्था है। मुझे इससे चोट लगी। यह गैर-जिम्मेदारी क्यों? गांधीजी की इस हत्या की जिम्मेदारी उन लोगों पर है, जिन्होंने सांप्रदायिकता से समझौता किया। सिर्फ महात्माजी की हत्या ही उनका उद्देश्य नहीं था। उनके बाद बड़े पैमाने पर हत्याएं करने का षड्यंत्र था। इन हत्याओं से वे दिल्ली की हुकूमत उलट देना चाहते थे। उनके आदमी हुकूमत में थे, पुलिस में थे, सिविल सर्विस में थे, सेक्रेटरियेट में थे। उनका आयोजन था कि जब दिल्ली पर ये हमला करेंगे, तो उनके ये सबके सब लोग उनकी मदद करेंगे। खतरा अभी टला नहीं है। चंद गिरफ्तारियों से कुछ होने-जाने का नहीं। मजबूत हाथों में इनका सर कुचलना होगा, साथ ही जनता में पूरा प्रचार करना होगा। ये नौजवान क्यों संघ में गये? उनमें शक्ति थी, उमंग थी। हम कहते रहे कि उनके लिए कोई रास्ता बनाइये। एक ऐसी सिविल गार्ड, नेशनल गार्ड बने, जिसमें हम नौजवानों को भर्ती करें, उन्हें कवायद सिखायें, हथियार चलाना सिखायें, उन्हें बौद्धिक शिक्षा दें। किन्तु ऐसा क्या किया गया? नेशनल गार्ड की बात में भी वही नौकरशाही तरीका, जैसे हजार वर्ष में नया हिन्दुस्तान बनेगा।

जैसा मैंने कहा, संकट टला नहीं है और हमें उसका सामना करना है। इसी उद्देश्य से हमने दिल्ली में एक बयान दिया। उस बयान को लेकर तरह-तरह की गलतफहमियां फैलायी जा रही हैं। यहां भी कहा गया है कि मैं उन गलतफहमियों को दूर करूं। आप मेरे अपने हैं। मैं आपके घर का हूं। आपको भी मेरे बारे में गलतफहमती हो, ऐसी उम्मीद मुझे नहीं थी। किन्तु दुर्भाग्य से ऐसे अखबार हैं, जिनकी नकेल करोड़पतियों और महाराजाओं के हाथ में है। वे जिस तरह प्रचार कर रहे हैं, उनके चलते आपके दिल में गलतफहमी हो जाये, तो आश्चर्य की बात नहीं। किन्तु आप मेरी नीयत पर शक करें, तब मुझे दुख होगा। मैं गलती कर सकता हूं, मतभेद भी हो सकता है; किन्तु यह कहना कि मैं महात्माजी की हत्या से फायदा उठाना चाहता हूं, मेरे साथ अन्याय करना है। 1930 से ही बिहार में सोशलिस्ट पार्टी कायम है। दूसरों की गलती से हमने कभी नहीं फायदा उठाया। फिर महात्माजी की हत्या से फायदा उठाना चाहें, तो मुझे सार्वजनिक जीवन में रहने का कोई हक नहीं। व्यक्तिगत रूप से मैं उनके कितना निकट था, आप जानते हैं। मेरी पत्नी और मुझे उनके निकट संपर्क का सौभाग्य प्राप्त था। आर्थिक प्रश्नों पर भी इधर उनसे मेरा बहुत-कुछ मत साम्य हो चला था। किन्तु, ऐसे भी अवसर आये हैं कि मैंने उनसे मतभेद प्रकट किया। किन्तु इस मतभेद में बदतमीजी नहीं, अश्रद्धा नहीं आने दी। फिर उनके उठ जाने के बाद मैं फायदा उठाना चाहूं, तो मेरे लिए राजनीतिक जीवन में रहने का स्थान नहीं। मेरा यह पक्का विश्वास है कि गांधीजी की हत्या इसलिए हुई कि हमसे गलतियां हुई, हमारे नेताओं से गलतियां हुईं। मैं भाग्य नहीं मानता कि मान बैठूं, यही होना था। यदि हमने जनता को संघ के खतरों से आगाह किया होता, हमारे बजीर संघ के जलसों में शामिल नहीं हुए होते और उसकी तारीफ नहीं किये होते, यदि हमने नौजवानों को समझाया हो, उसे हटाया होता, तो मेरा विश्वास है, हमने गांधीजी को नहीं खोया होता। गांधीजी की रक्षा का जो इंतजाम था, उसमें भी त्रुटियां थी। हमसे गलती हुई है, तो हमें साफ स्वीकार करना चाहिए। किन्तु, हम तो बातों पर हमेशा लीपा-पोती करते हैं। मैं समझता हूं कि सत्य कहने से हम गाली सुनेंगे, तो भी उसे जनता के सामने रखना ही चाहिए। यही हमारी मंशा है। कहा जाता है, गांधीजी गये तो जयप्रकाश को पद की उत्सुकता हुई है। मैं

पद चाहता, तो पहले मिल गया होता। ऐसा पद, जिनके लिए खुशामद होती हैं, सिफारिशें होती हैं। मंत्री का पद भी मेरे लिए दूर नहीं था। खुद महात्माजी ने कई बार चर्चा की थी। मैं ज्यादा अक्लमंद नहीं, किन्तु इतनी अक्ल तो मुझमें थी ही यदि मैं पद चाहता, तो खुशामद करता, न कि इस तरह की निर्भीक बातें कहता। यह निर्भीकता अपने माता-पिता से सीखी, अपने सीखी और गांधीजी से सीखी। खैर, इस बयान से किसी का नुकसान नहीं हुआ, नुकसान हुआ तो मेरा ही। एक सभा में मैंने पटेल और नेहरू के मतभेदों की चर्चा की, तब भी फब्तियां कसी गयी कि शोक-सभा में यह चर्चा ठीक नहीं। दिल्ली में जितनी शोक-सभाएं मैंने की, उतनी दूसरे किसी ने नहीं की। इन बीसों सभाओं में से सिर्फ एक में मैंने इसकी चर्चा की और वह भी खास उद्देश्य से। दिल्ली में यह आम चर्चा थी कि पटेल और नेहरू में हर मामले में मतभेद है। बड़े-बड़े लोगों के हल्के में भी यही चर्चा। विदेशी अखबारों तक में भी यही चर्चा। में चाहता था कि उसे सामने रख दूं कि हमारे वे दोनों मिलकर आगे का रास्ता बतावेंगे। मुझे खुशी है कि इस काम में भी मुझे कामयाबी मिली और दोनों नेताओं के जो बयान छपे हैं, उससे बात साफ हो गयी है।

दिल्ली की वर्तमान हुकूमत से बहुत लोग संतुष्ट नहीं हैं। जब सांप्रदायिकता से लड़ना है, तो फिर उसमें हिन्दू सभा या अकाली दल के लोगों का क्या है। मंत्रिमंडल कोई दुर्घटना होने पर ही बदलता है। लड़ाई के जमाने में चर्चिल और रूजवेल्ट ने कई बार अपने मंत्रिमंडलों में परिवर्तन किये। अंग्रेजों पर आज आर्थिक संकट है। इस संकट के मुकाबले में एटली ने अपने मंत्रिमंडल में कितने ही क्रांतिकारी परिवर्तन किये हैं। मैंने कहा, हमारे लिए वह भी तो महान संकट आ पड़ा है, यही मौका है कि मंत्रिमंडल में परिवर्तन किये जायें। सांप्रदायिक लोगों को वहां से हटाया जाय और वह जो हमेशा दुश्मन की कतार में रहे हैं। यह जनता की हुकूमत है, यह पूंजीपतियों की हुकूमत नहीं। तो भी अभी हाल में एक नेता ने पूंजीपतियों को संबोधित करते हुए कहा कि घबराते क्यों हो, एक वजीर को हमने इसीलिए रखा है कि वह तुम्हारे प्रतिनिधि है। आज ही बताइये, क्या इस तरह का आश्वासन जनता के हित के लिए है? मंत्रिमंडल में परिवर्तन करने की बात कहकर मैंने कोई बेमौके बात नहीं कही है, यह मेरा आज भी विश्वास है।

किन्तु यह तो कैफियत है, जो आप लोगों को दे देना जरूरी था; क्योंकि आप मेरे अपने हैं। लेकिन असल बात तो वह है, जो कि मैंने आपसे पहले कही। यह जो कुछ गिरफ्तारियां हो रही हैं, उनका होना जरूरी था। किन्तु इन गिरफ्तारियों से सांप्रदायिकता दूर होने की नहीं। फिर संघ या मुस्लिम लीग के नेशनल गार्ड को गैर-कानूनी करार दिया गया, किन्तु मैं पूछता हूं कि महासभा या मुस्लिम लीग को भी गैर-कानूनी करार क्यों नहीं दिया जाता। यह कहना कि इन संस्थाओं को दबावा प्रजातंत्र को दबाना होगा, बिलकुल गलत बात है। यदि हमें एक संयुक्त देश बनाना है, तो राष्ट्रीय एकता को कायम रखना होगा। धर्म के नाम पर वोट मांगने का हक देना उस राष्ट्रीय एकता को तोड़ना है। आर्थिक कार्यक्रम के बदले धर्म के नाम पर वोट मांगने की इजाजत अगर हम देंगे, तो हमारे राजनीतिक जीवन में एक ऐसी धांधली मचेगी कि हमारे लिए कहीं ठिकाना न रहेगा। जिस समय पाकिस्तान बना, सोशलिस्ट पार्टी ने उसी समय कहा था कि देश में किसी सांप्रदायिक संस्था के लिए इजाजत नहीं होनी चाहिए। हम आज भी कहते हैं कि तुरंत कानून बनाना चाहिए कि कोई भी संस्था एक जात, फिरका या धर्म के नाम पर राजनीतिक क्षेत्र में काम नहीं कर सकती। पहले हमारी आवाज नहीं सुनी गयी। महात्माजी के इस महान बलिदान के बाद भी तो हमारे इस कथन की सच्चाई को समझने की कोशिश की जाय।

सबसे बड़ा खतरा तो उन लोगों से है, जो हुकूमत के अंदर रहते हुए भी संघ के हमदर्द हैं। बिहार के कुछ बड़े पुलिस अफसरों पर भी यह इलजाम है; उसका एक सबूत भी हमारे पास है। बिहार के संघ का संचालक कोई जोशी नाम का आदमी था। भारत सरकार ने संघ को गैर-कानूनी घोषित किया, उसके तीन दिनों के बाद जोशी के घर की तलाशी हुई। अंग्रेजों के जमाने में कांग्रेस जब गैर-कानूनी होती थी, उसी आधी रात को सारे देश में तलाशियां हो जाया करती थी, गिरफ्तारियां हो जाया करती थीं। आज तो अपना राज है। और भी मुस्तैदी से काम होना चाहिए। फिर यह कैसी बेढंगी बात कि तीन दिनों के बाद हमारे पुलिस अफसरों की नींद टूटे। मैं उन लोगों में से हैं, जो यह मानते हैं कि सरकारी मुलाजिमों को भी अधिकार है कि वे राजनीतिक ख्याल रखें और अपनी पसंद के राजनीतिक दलों के लोगों को ही वोट दें। सरकारी अफसर भी तो नागरिक हैं। उन्हें नागरिकता का हक क्यों न मिले? लेकिन हुकूमत के अंदर एक आतंकवादी जमात के मेम्बर हों, यह बहुत बड़े खतरे की बात है। अफसोस की बात है कि ऐसे लोगों पर दिल्ली या यहां कोई कार्रवाई नहीं है। जिसका नमक खाते हैं, उसी के साथ गद्दारी! ऐसे लोगों को मुहकमे से हटा देना चाहिए। मेरा बस चले तो उन्हें जेल में डाल देना चाहिए।

सांप्रदायिकता का अंत सिर्फ सरकार को ही नहीं करना है। आप लोगों का भी इसमें कोई कर्तव्य है। यथार्थ बात तो यह है कि सांप्रदायिकता आप ही मिटा सकते हैं। आपमें से एक-एक का यह धर्म होना चाहिए कि वहां भी सांप्रदायिकता देखिये, उसका सर कुचल दीजिए। वे जगह से अपने को निकाले हुए समझें। नौजवानों से मेरी खास अपील है कि आप अपनी जिम्मेदारी समझें और फिरकापरस्ती से लड़ें पर हमारे सर पर जो कलंक का टीका लग गया है, उसे नौजवान ही धो सकते हैं। हमारा कितना बड़ा पतन हो गया। हमारे देश में ऐसा दुष्कर्म कभी नहीं हुआ है। बहुत से देश मिट गये, किन्तु हमारा देश इसीलिए बचा रहा कि इसमें उच्च कोटि की नैतिकता थी। दूसरे देशों की तरह हमने सेनापतियों या सम्राटों की पूजा नहीं की। हमने हमेशा महात्माओं और धर्मगुरुओं की इज्जत की, किन्तु आज हमारा इतना पतन हो गया है कि हमने सबसे बड़े महात्मा की हत्या कर डाली है। हम पशु हो गये हैं।

हमें पशुता से मानवता की ओर बढ़ना है। महात्माजी ने हमें बताया था कि अत्याचार का बदला देश में अत्याचार से नहीं लेना है। अगर पाकिस्तान में लूट होती है, तो हम भी लूट-मार करें। बच्चों की हत्या करें, औरतों की इज्जत लूटें? यह धर्म नहीं, न्याय नहीं, इसमें देश का कल्याण नहीं। नोआखाली का बदला हमने बिहार में देखा, लेकिन उसके बाद क्या आया। पाकिस्तान बनकर रहा, लूट-हत्या बढ़ती गयी और अंत में हमें महात्माजी से हाथ धोना पड़ा। महात्माजी ने पाकिस्तान नहीं मंजूर किया था, न हमने किया था। पाकिस्तान तो मंजूर किया था पटेल साहब ने, नेहरू साहब ने। अब मुसलमानों की भी आंखें खुल रही हैं। जिन लोगों ने पाकिस्तान के नाम पर उन लोगों से वोट लिये, वे उन्हें छोड़कर चले गये। यदि इस पर भी वे गद्दारी करें, तो उन्हें गोली से उड़ा दो, किन्तु याद रखो, गद्दारों की कमी हिन्दुओं में नहीं है। जिन्होंने गांधी व नेहरू की गिरफ्तारी की, क्या वे मुल्क के गद्दार नहीं थे? जो आज भी सरकारी मुहकमों में घूसखोरी करते हैं; आजादी हिन्दुस्तान में घूस क्या यह गद्दारी नहीं है? जिन व्यापारियों ने चोरबाजारी की, क्या वे गद्दार नहीं? जो लोग त्रिवेणी संघ, भूमिहार सभा आदि बनाकर जाति के नाम पर वोट मांगते हैं। क्या उनसे भी बढ़कर कोई दूसरा गद्दार है? इन गद्दारों को पहले खत्म करो, तब मुसलमानों की ओर नजर डालना। हमारे देश में हमेशा से तरह-तरह के धर्म रहे हैं, तो भी हममें एकता रही है। वही भारत की मिट्टी की खूबी है। महात्माजी की इस शिक्षा को जिन्दगी में उतारो और अपने देश के नये निर्माण में लग जाओ। हमें नये गांव बसाने हैं, नये शहर बसाने हैं, एक नयी जिन्दगी, संस्कृति का निर्माण करना है। एक ऐसा हिन्दुस्तान बनाना है, जिसमें शोषण न हो, दोहन न हो, भुखमरी और फटेहाली न हो। ऐसे नये भारत की रचना करने से ही दुनिया में हमारी शांति होगी, यही कल्याण का मार्ग है। महात्माजी ने अपने जीवन भर यह शिक्षा दी। हम उनकी मृत्यु से यही शिक्षा लें। ❑

शख्सियत
8 फरवरी : जाकिर हुसैन जयंती

सारा भारत मेरा घर है

❑ **सईदा खुर्शीद आलम**

वे सबके लिए मियां थे। उनके बच्चे भी उन्हें इसी नाम से पुकारते थे। एक संपन्न परिवार में जन्में लेकिन फिर क्षय और प्लेग रोग के कारण अपने पिता-माता और तीन भाईयों को खो बैठे जाकिर हुसैन सचमुच अनाथ ही हो गये थे। तिनका-तिनका फिर से जोड़ न सिर्फ अपना एक छोटा-सा घर बसाया बल्कि फिर सारे भारत को अपना मान लिया। उन्होंने जो संस्थाएं खड़ी कीं, जिन संस्थाओं का काम संभाला, उन्हें पहले से अधिक चमका कर समाज को वापस सौंपा था। ऐसे बेदाग श्री जाकिर हुसैन के कुछ आत्मीय प्रसंग बता रही हैं उनकी बेटी सईदा खुर्शीद।

'सारा भारत मेरा घर है और उसमें रहने वाले मेरा परिवार'—ये किसके मीठे बोल हैं, जो हमारे कानों में गूंज रहे हैं? यह बोलने वाला देश का सपूत और सचमुच भारत-रत्न था, मुल्क का राष्ट्रपति था पर अपने को देश का सेवक समझता था। आज हमसे उन्हीं की जीवन कहानी सुनिए।

आप कहानी सुनाने वाले के विषय में भी कुछ जान लें। कुदरत के खेल निराले हैं, जिसे चाहे जो बना दे। मेरी खुशकिस्मती है कि मुझको उसने उस महान स्नेहमय बाप की बेटी बनने का गौरव प्रदान किया। उनकी जिन्दगी में अमीरी और गरीबी के दिन आये। वे अध्यापक के पद से लेकर देश के बड़े-बड़े पदों पर रहे और अंत में देश की सबसे बड़ी इज्जत का ताज उनके सिर पर रखा गया। मगर मेरे लिए वे हर जमाने और हर क्षण एक स्नेहमय मिसाली बाप और एक बेहतरीन इनसान रहे। बचपन से हमेशा मैंने उन्हें मियां कहकर पुकारा है। अब आप एक खुशनसीब बेटी से उसके बाप की कहानी सुनिए।

उत्तर प्रदेश में एक जिला है फर्रुखाबाद। यह मुगल बादशाह फर्रुखसियर के जमाने में बसाया गया था। यह जगह छपाई की कला के लिए बहुत प्रसिद्ध है। यहां के छपे हुए लिहाफ, अबरे और रजाइयां न केवल अपने देश में लोकप्रिय हैं बल्कि यहां की छपी हुई चीजें देश के बाहर भी पसंद की जाती हैं। इस फर्रुखाबाद में एक कस्बा है कायमगंज। हमारी कहानी यहीं से शुरू होती है, यही हमारा पुराना वतन है।

यह पठानों की पुरानी बस्ती है। इसका नाम इस तरह पड़ा कि पुराने जमाने में भारत और अफगानिस्तान की सीमा से पठानों के काफिले, समय-समय पर भारत में रोजगार की तलाश में आते रहे और अधिकतर फर्रुखाबाद के आसपास के इलाकों में आबाद हुए। उस समय के राजा ने उनकी हिम्मत बढ़ाई और सहायता भी दी। उन्हें रहने और खेती करने के लिए जमीन और सेना में नौकरियां मिलीं। इस तरह अनेक सालों तक ये लोग यहां रहे।

उन्हीं में से एक मोहम्मद खां बंगश हुए हैं। वे बड़े वीर, प्रतिभाशाली और होनहार आदमी थे। यह फर्रुखसियर का जमाना था। बादशाह उनसे बहुत खुश था। उसने उन्हें बहुत-सा पुरस्कार और बड़ी जागीर दी, साथ ही नवाब की पदवी भी। दिल्ली में बंगश का पुल और बंगश का कमरा उन्हीं के नाम से है। बंगश के कमरे की चर्चा तो गालिब के सिलसिले में भी हुई है।

यह मोहम्मद खां बंगश खास इसी जगह के रहने वाले थे, जहां अब कायमगंज

आबाद है। कहते हैं कि इस जह का नाम उन्होंने अपने बेटे कायम खां के नाम पर रखा था। कायमगंज 1713 ई. में बसाया गया। उसके बाद भी पठानों के आगमन का सिलसिला चलता रहा। वे यहां आकर आबाद होते रहे। उन्हीं में खैबर और कोहार से आफरीदी पठान आकर यहां बस गये, जिनकी नस्ल अब तक कायमगंज में पायी जाती है। वे लोग बड़े खूबसूरत सुर्ख-सफेद, लंबे-तगड़े और बहादुर थे। पिछले पठानों की तरह तत्कालीन सरकार ने इन्हें भी आबाद होने के लिए सुविधाएं दीं। उन लोगों ने अपने कबीलों के नाम पर कायमगंज में अपने मोहल्ले आबाद किये। उदाहरण के लिए, कलां खैल, शकुल खैल, मवल खैल, कौकी खैल, हसन खैल आदि। खैल पश्तों में कबीले को कहते हैं।

इन कबीलों में से शकुल खैल कबीले में दो भाई थे—हसन खां और हुसैन खां। हुसैन खां हमारे पूर्वज थे। यह मोहम्मद शाह के जमाने में सन् 1719 ई. में भारत आये। हुसैन खां बहुत खूबसूरत, गंभीर, सूफी मनुष्य थे। पढ़ना-पढ़ाना उनका शौक था। पठानों में उनके असंख्य चेले थे। वे मदा खौन की उपाधि से पुकारे जाते थे। मदा खौन पश्तों में बड़े उस्ताद को कहते हैं।

मदा खौन के बेटे अहमद हुसैन खां, उनके बेटे मुहम्मद हुसैन खां हुए। मुहम्मद हुसैन खां के बेटे गुलाम हुसैन थे जो झुम्मन खां कहलाते थे। वे मियां के दादा थे। झुम्मन खां बड़े खरे, स्पष्ट वक्ता और न्यायप्रिय व्यक्ति थे। न किसी की ताकत से डरते थे, न किसी की धन-दौलत से प्रभावित होते। बहुत रहमदिल और स्नेही थे। हर एक की सहायता के लिए हर वक्त तैयार रहते और दूसरों की सहायता के लिए अपने को खतरे में डालने से भी नहीं चूकते थे।

झुम्मन खां के दो बेटे थे—फिदा हुसैन खां और अता हुसैन खां। अता हुसैन खां के कोई औलाद नहीं हुई। फिदा हुसैन खां मियां के बाप थे। उनका विवाह पठानों के एक इज्जतदार परिवार में नाजनीन बेगम के साथ हुआ। उनके सात लड़के हुए—मुजफ्फर, आबिद, जाकिर, जाहिद, यूसुफ, जाफर और महमूद। मियां अपने भाइयों में तीसरे नंबर पर थे।

मियां का जन्म 1897 ई. में हैदराबाद के बेगम बाजार मोहल्ले में हुआ, जहां उनके पिता अर्थात् हमारे दादा की हवेली थी। कहते हैं, यद्यपि सब भाई सूरत और आदत में अनुपम थे तथापि मियां की हैसियत उन तारों के झुरमुट में पूर्णमासी के चंद्रमा की सी थी।

फिदा हुसैन खां अर्थात् मियां के पिता बहुत प्रतिभाशाली और होनहार थे। शुरू से उनको पढ़ने-लिखने का बहुत शौक। बीस साल की आयु में रोजगार की तलाश में हैदराबाद गये। घर से कुछ रुपये ले गये थे, उससे मुरादाबादी बर्तनों की एक दुकान खोल ली और साथ ही साथ कानून की परीक्षा की तैयारी भी करते रहे। परीक्षा दी और प्रथम श्रेणी में सफल हुए।

दुकान खत्म करके वकालत शुरू की। खुदा की करनी थी कि उनकी वकालत बहुत चमकी, बहुत रुपये कमाये। कानून पर बहुत-सी किताबें लिखीं। बेगम बाजार में एक दो-मंजिला घर बनाया। भगवान ने बहुत कुछ दिया। धन-दौलत के साथ खूबसूरत, प्रतिभाशाली और होनहार संतान भी। एक-दो नहीं, पूरे सात बेटे। मगर जैसे उनकी फूलती-फलती बगिया को किसी की नजर लग गयी। केवल 16 वर्ष ही वकालत कर पाये थे ओर अभी 39 वर्ष के ही थे कि क्षय रोग में फंस गये और सन् 1907 में खानदान का यह रौशन चिराग सदा के लिए बुझ गया।

अब मियां की शोकाकुल मां बच्चों को लेकर कायमगंज आ गयीं और मियां के चचा अता हुसैन खां के संरक्षण में रहने लगीं, किन्तु दो साल के बाद उनका भी स्वर्गवास हो गया। पिता के स्वर्गवास के समय मियां की आयु केवल दस वर्ष थी।

मां ने चार बड़े बेटों को इटावा में दाखिला करवा दिया। इसी जमाने में कायमगंज में ताऊन (प्लेग) की ऐसी बीमारी फैली कि बस्तियां-की-बस्तियां बर्बाद हो गयीं। इस बीमारी से उनका घर भी न बच पाया। पूरा घर बर्बाद। बीमारी का ऐसा जोर था कि जनाजा उठाने वाला नहीं मिलता था। घर में सबसे पहले मियां के छोटे भाई जाफर हुसैन खां उसका शिकार हुए। उसके बाद नानी, मां और सारे नौकर खत्म हो गये और घर में ताला पड़ गया। सबसे छोटे भाई महमूद हुसैन खां बचे थे जिनको उनकी चाची अपने घर ले गयीं।

मां ने बच्चों की परेशानी के ख्याल से इटावा अपनी बीमारी की खबर नहीं भेजी। अचानक यह दिल हिला देने वाली खबर मिली। घर पहुंचते तो घर में ताला लगा देखा। मासूम दिलों पर कयामत गुजर गयी। अब खुदा के सिवा इन अनाथों का कोई सहारा न था। और वास्तव में उसी ने सहारा दिया। मां-बाप जैसा अमूल्य धन छीनकर उनमें धैर्य, साहस और करुणा की भावना पैदा कर दी, जिसने उनके समस्त अभावों की पूर्ति की। उन्होंने अपनी शिक्षा जारी रखी। लालन-पालन के लिए उनके संरक्षक बनाये गये जो उनकी संपत्ति की देखभाल और उनकी शिक्षा का प्रबंध करते थे।

लेकिन कठिनाइयां अभी समाप्त नहीं हुई थीं। संभवतः यह अल्लाह मियां की तरफ से मियां के प्रशिक्षण का प्रबंध था। खुदा को उनसे जो काम लेने थे, वे आसान न थे। वह एक कड़ी जिन्दगी थी, जिसके लिए उनके व्यक्तित्व को दृढ़ और साहसी बनाना उद्देश्य था। खुदा-खुदा करके वह वक्त आया कि बड़े भाई मुजफ्फर हुसैन खां अपनी शिक्षा पूरी कर हैदराबाद में विशेष न्यायाधीश हो गये; किन्तु प्रकाश की एक किरण के बाद फिर अंधेरा। 27 वर्ष की आयु में उन्हें क्षय रोग हो गया और वे भी चल बसे।

मियां की प्रारम्भिक शिक्षा घर पर ही

हुई। कहते हैं कि बच्चे की सबसे पहली पाठशाला मां की गोद है। बच्चा जीवन का प्रारम्भिक पाठ यहीं सीखता है। यहां वे सब बुनियादी आदतें पड़ चुकी होती हैं जिन पर आगे चलकर जीवन का पूरा भवन तैयार होता है। किसी मां की ममता के खजाने में प्यार की कमी नहीं होती। किन्तु यदि उस प्यार में बुद्धि का समावेश न हो तो लाभ की बजाय वह हानिकारक हो जाता है। लेकिन यदि मां में प्यार के साथ-साथ अक्ल भी हो तो वह बच्चों में बड़ी आसानी से ऐसे गुण पैदा कर देती है, जो एक अच्छे इनसान के लिए जरूरी होते हैं। बच्चे के लिए मां ऐसा प्रभावशाली व्यक्तित्व है कि उसकी हर क्रिया और अदा बच्चे के मस्तिष्क पर छाप छोड़ देती है और वह उसी सांचे में ढल जाता है।

मियां की मां बहुत समझदार और नेकदिल औरत थीं। उनकी दान और सहानुभूति की चर्चा अब भी कायमगंज की बड़ी-बूढ़ियां करती हैं। मियां भी प्रायः उनकी चर्चा बड़ी मोहब्बत से करते थे और उनके मरने की घटना का हाल सुनाते थे तो उनका दिल भर आता था और आंखों में आंसू आ जाते थे। वे अपने बच्चों से अगाध प्रेम करती थीं। उनके सात लड़के थे। कोई उनसे संख्या पूछता तो प्रायः टाल जातीं कि कहीं इन हीरों को नजर न लग जाये। उनके जीवन में केवल एक बच्चे की मृत्यु हुई थी, जिसकी आयु छह वर्ष थी। यह घटना उनके लिए बहुत घातक थी। यह भी उन पर खुदा की कृपा थी कि एक के बाद एक तीन हट्टे-कट्टे जवानों को और अपने दिल के टुकड़ों को अपनी आंख से मिट्टी में मिलते नहीं देखा।

वे हमेशा लोगों को देती रहती थीं। कोई उनके दर से खाली हाथ न जाता और देना भी ऐसा कि इस हाथ से दिया, उस हाथ को खबर न हुई। जिससे मिलतीं बड़ा आदर-सत्कार करतीं, चाहे वह किसी भी हैसियत का आदमी हो। हरेक से बराबर सलूक करतीं। बुजुर्गों का आदर और मान उनकी घुट्टी में पड़ा हुआ था। रख-रखाव ऐसा कि अपने-पराये सब खुश और उनका दम भरते थे। इन विशेषताओं के साथ उन्होंने अपने बच्चों की जैसी शिक्षा-दीक्षा की होगी, उसका अनुमान कठिन नहीं। उनकी मोहब्बत नादान औरतों की तरह अंधी न थी। वह अपने बच्चों के भविष्य के प्रति सावधान थीं। वे जानती थीं कि कायमगंज में उनकी शिक्षा का अच्छा प्रबंध होना कठिन है, इसलिए उन्होंने अपनी आंखों के तारों को नजरों से दूर भेजना स्वीकार कर लिया और जब उन पर प्लेग का आक्रमण हुआ तो बच्चों की परेशानी और उनकी शिक्षा में रुकावट के खयाल से अपनी बीमारी की सूचना तक न दी और बच्चों को अंतिम बार देखने की इच्छा अपने दिल में लिए हुए इस दुनिया से विदा हो गयीं।

सन् 1907 ई. में मियां इटावा के इस्लामिया हाई स्कूल में दाखिल हुए। सौभाग्य से वहां उन्हें बहुत अच्छे और स्नेही शिक्षक मिले, विशेष रूप से इटावा स्कूल के हेडमास्टर सैयद अल्ताफ हुसैन साहब और स्कूल के संस्थापक मौलवी बशीरुद्दीन साहब बड़ा स्नेह करते और ध्यान देते। इन दोनों बुजुर्गों का मियां पर बहुत गहरा असर था। उन्होंने उनसे बहुत कुछ सीखा और वे उनकी हमेशा बड़े सम्मान से चर्चा करते।

इटावा के विद्यार्थी जीवन की एक घटना मियां खुद सुनाते थे, जिससे पता चलता है कि उनके शिक्षकों को उनका कितना ध्यान रहता था। एक दिन मास्टर अल्ताफ हुसैन साहब ने मियां और उनके साथियों के खाने में एक-एक गिलास पानी मिला दिया। खाने का वक्त आया तो सब साथी एक-एक कौर लेकर खिसियाकर उठ खड़े हुए, लेकिन मियां ने निहायत सहजता से अपना खाना पूरा किया और इस तरह उठे जैसे बहुत मजेदार खाना खाया हो! हल्ताफ हुसैन साहब ओट से यह सब तमाशा देख रहे थे, सामने आये और मियां के सिर पर बड़े स्नेह से हाथ फेरा और कहा कि मैंने तुम लोगों की परीक्षा के लिए जान-बूझकर खाने को बे-मजा करने के लिए पानी मिला दिया था। मैं जानना चाहता था कि तुममें से कौन स्वाद के आनंद का बलिदान कर सकता है। मेरा ख्याल था कि जाकिर, तुम ही सफल होगे। मुझे खुशी है कि मेरा विचार बिलकुल ठीक निकला।

स्कूल के जीवन में मियां विद्यार्थियों और शिक्षकों दोनों में बहुत लोकप्रिय थे। पढ़ने-लिखने का उन्हें आरंभ से ही शौक था। वे अपने अध्ययन को केवल पाठ्य-पुस्तकों तक सीमित नहीं रखते थे, बल्कि इसके अतिरिक्त ज्यादा-से-ज्यादा पढ़ते रहते। उन्हें अखबार पढ़ने और खबरें सुनाने का भी बहुत शौक था। इटावा में स्कूल के उनके साथ हबीबुर्रहमान साहब लिखते हैं : 'वे पायनियर अखबार खरीदने प्रतिदिन इटावा स्टेशन जाते। आगे वे होते और पीछे मैं। स्टेशन पर अखबार उतरते ही जाकिर साहब उसे हासिल करते और फिर हम लगभग भागते-भागते स्कूल के बोर्डिंग हाउस में लौट आते। वहां विद्यार्थी हमारी प्रतीक्षा करते मिलते। हमारे लौटते ही वे हमारे चारों तरफ घेरा बना लेते। जाकिर साहब उन्हें खबरों का न केवल अनुवाद करके सुनाते बल्कि उनकी समीक्षा भी करते।'

खुदा ने बचपन से ही मियां को लेखन और भाषण पर पूर्ण अधिकार दिया था। जो बात वे कहते थे, ऐसे सलीके से कहते थे कि सुनने वाले के दिल में उतर जाती थी। उस जमाने में तुर्की और इटली में युद्ध हो रहा था। सामान्यतः हिन्दुस्तान के मुसलमानों में तुर्की के प्रति सहानुभूति का बहुत जोश था। मियां भी उसमें बहुत आगे रहे। उनके आह्वान पर लोगों ने गोश्त खाना बंद कर दिया था ताकि जो रुपये बचें, उनसे तुर्कों की सहायता की जाये। वे इस सिलसिले में जगह-जगह भाषण भी देते थे और चंदा जमा करते थे।

उनका ऐसा ही एक भाषण उनकी शादी का कारण बना। उस जमाने में चंदा

इकट्ठा करने के लिए उन्होंने कायमगंज में भी एक भाषण दिया, जिसमें हमारी मां के दादा भी उपस्थित थे। उन पर भाषण का बहुत प्रभाव पड़ा। उन्होंने अपना बटुआ मियां की टोपी में उलट दिया, साथ ही यह भी दिल में तय किया कि अपनी लाडली पोती का विवाह वे इसी लड़के से करेंगे। उनकी मां का देहांत हो चुका था। दादा की वह इकलौती पोती थीं। उनके और सब बच्चे खत्म हो चुके थे इसलिए दादा उन्हें बहुत चाहते थे। वे उनकी आंखों का तारा थीं। वे उन्हें प्यार में पुतली कहा करते थे। वैसे हमारी मां का नाम शाहजहां बेगम है। मियां हमारी मां के दादा के सगे भाई के नाती थे। भाषण सुनकर घर आये तो उन्होंने मियां की मां अर्थात् अपनी भतीजी को बुलाया और कहा मैं जाकिर से अपनी पोती का विवाह करना चाहता हूं। हमारी दादी अर्थात् मियां की मां यह प्रस्ताव सुनकर बहुत खुश हुईं। वे तो खुद चाहती थीं, लेकिन चर्चा के सम्मान के कारण अभी तक जुबान न खोली थी। अब उन्हें क्या आपत्ति हो सकती थी, किन्तु दोनों की तकदीर में यह खुशी देखनी नहीं लिखी थी। थोड़े ही दिनों में दोनों का स्वर्गवास हो गया औरप यह शादी मियां के बड़े भाई और अम्मा की मां ने की।

जिस तरह मियां के भाषण में जादू था, उसी तरह उनका लेखन भी जादू का असर रखता था। उनका भाषण और लेखन केवल दिखावा नहीं था, बल्कि वे जो कहते थे और जो लिखते थे, उसका खुद भी पालन करते थे। प्रारंभ ही में उन्होंने अपने व्यक्तित्व का एक काल्पनिक चित्र बनाया था, जिस पर हर समय उनकी दृष्टि रहती। इटावा स्कूल में उन्होंने एक लेख लिखा था। उस समय उनकी आयु तेरह-चौदह वर्ष की रही होगी। उस लेख का शीर्षक था : 'विद्यार्थी जीवन।' उस लेख से ज्ञात होता है कि उनके सामने जीवन का क्या स्वरूप था।

वे लिखते हैं : 'विद्यार्थी से आशय वह व्यक्ति है जो अपने स्वभाव को वर्तमान स्थिति से बेहतर बनाना चाहता है। जो अपनी शक्ति को, जहां तक बढ़ने की उसमें ताकत है, वहां तक बढ़ाना चाहता है...इस बात का इच्छुक है कि जहां से अक्ल का सबक मिले, जहां से अच्छी-अच्छी बातें उसको मालूम हों, जहां से ज्ञान और उच्च विचार उसको मिल सकें, जहां से उस दुनिया के विषय में और अपने विषय में ऐसी बातें मालूम हों जो उसे नहीं मालूम और जिनको मालूम करने से उसको दुनिया में सहायता मिलेगी, वहां से वह उन सबको प्राप्त कर ले। विद्यार्थी होने के लिए कम-से-कम इतनी बुद्धि जरूर होनी चाहिए कि वह बुरे और भले में, लाभ और हानि में, पसंद करने योग्य और घृणा करने योग्य बातों में अंतर कर सके।'

इस आयु में एक व्यक्ति ने मियां में आध्यात्मिकता की ज्योति जगायी और उनमें सूफी संतों जैसे गुण उत्पन्न किये। वे थे हसन शाह साहब। हसन शाह मियां के दूर के संबंधी थे। वे एक सूफी बुजुर्ग थे और शाह तालिब हुसैन फर्रुखाबादी के चेले थे। हसन शाह को प्रारंभ से ही मियां के व्यक्तित्व में विशेष रुचि रही। जब मियां छुट्टियों में घर आते तो वे अधिकतर उन्हें अपने साथ रखते। हसन शाह को अध्ययन का बहुत शौक था। इतनी आय न थी कि किताबें खरीद सकें। इसलिए वे करते यह थे कि जहां भी अच्छी किताबें मिलतीं, ले आते और उनकी नकल कराकर अपने पास रखते। ये किताबें ज्यादातर सूफी मत पर होतीं और इसके अतिरिक्त रसायनशास्त्र और दूसरे शास्त्रों पर भी होतीं। वे इन किताबों की नकल मियां से कराया करते थे और जहां-तहां मुश्किल पाते, समझाते भी रहते थे। मियां कहते थे कि इन किताबों की नकल करने से उन्हें बहुत लाभ हुआ। एक तो उनका लेख बहुत अच्छा हो गया; दूसरे, विभिन्न विषयों में उनका ज्ञान बढ़ गया। रसायन के बहुत-से नुस्खे उन्हें जुबानी याद हो गये। मियां बताते थे कि बाद में वे नुस्खे बहुत काम आये।

उनके एक दोस्त थे अताउल्ला साहब। वे साईंस के विद्यार्थी थे। उन्हें प्रयोग करने का बहुत शौक था। वे सोना बनाने का प्रयोग किया करते थे। सोना तो खैर क्या बनता था, अलबत्ता साहब के कमरे में हर समय अंगीठी दहकती रहती जिस पर सब मित्रगण जब चाहते, चाय बना लेते! यह अताउल्ला साहब उस वक्त तो सोना न बना सके किन्तु आगे चलकर उनके इस शौक ने सोना प्राप्त करने के तरीके का आविष्कार कर लिया। वे अमेरिका चले गये। वहां भी वे इसी धुन में लगे रहे और एक दिन उन्होंने चावल चंद मिनट में तैयार करने की विधि खोज ली, जिससे उन्होंने काफी सारा धन कमाया और फिर उसे बहुत अच्छे कामों में लगाया।

पीर हसन शाह से मियां को बड़ी श्रद्धा थी। वे प्रायः उनके किस्से सुनाया करते थे। पीर हसन शाह प्रारंभ में हिन्दुओं से कुछ पक्षपात रखते थे और कभी-कभी उनके मुख से अनुचित शब्द भी निकल जाते थे। यद्यपि इस्लाम और हर धर्म इनसानों से मोहब्बत सिखाता है, किन्तु होता यह है कि धर्म की असली आत्मा को समझे बगैर जब कोई अपने धर्म का पाबंद होता है, तो उतनी ही दूसरे धर्मों से घृणा करने लगता है और दूसरे धर्मों के मानने वालों को घृणा के योग्य समझता है। यही एक बारीक अंतर है धर्म के सच्चे व्यक्ति में और एक दिखावटी, कट्टर धार्मिक व्यक्ति में। एक मान्यताओं और मूल्यों को मानता है, दूसरा बाहरी रीति-रिवाज को, जिसे वह धर्म का नाम दे देता है।

हां, तो जब हसन शाह के विषय में यह बात उनके पीर तालिब हुसैन साहब को मालूम हुई तो उन्होंने बुलाकर कहा कि हसन शाह, तुम्हारा दिल अभी पूरी तरह पाक और साफ नहीं हुआ। एक खुदा को मानने वाले के दिल में खुदा की सृष्टि से घृणा की गुंजाइश नहीं होती। इसका इलाज यह है कि तुम सिर पर चोटी और माथे पर तिलक लगाकर कश्मीर से कन्याकुमारी तक पैदल यात्रा करो ताकि ज्यादा-से-ज्यादा लोग तुम्हें इस हालत में देखें और तुम्हें शिक्षा मिले।

हसन शाह ने पीर की आज्ञा के आगे सिर झुका दिया और उनकी हिदायत के अनुसार यात्रा की। उसके बाद उन्हें पैदल चलने की इतनी आदत हो गयी थी कि जब जी चाहता, कपड़ों और किताबों की एक गठरी ली और चल दिये। अंत में जब बहुत बूढ़े हो गये थे और चल नहीं पाते थे तो उन्होंने एक चार पहियों वाली गाड़ी बना ली थी, उस पर कपड़े और किताबें रखकर धकेलते हुए ले जाते थे।

मियां को सूफियों और बुजुर्गों से जो श्रद्धा हसन शाह के कारण प्राप्त हुई थी, वह जीवन भर बनी रही। उन्होंने बुजुर्गों की शिक्षा और जिन्दगी के हालात से जो सबक सीखा, वह इनसान की मोहब्बत थी, जिसमें न धर्म-जाति का भेद था, न रंग और नस्ल का अंतर। हजरत निजामुद्दीन औलिया की दरगाह पर भाषण देते हुए उन्होंने इन्हीं विचारों को अभिव्यक्त किया : ''ख्वाजा अजमेरी ने कहा है कि खुदा तक पहुंचने के लिए तीन चीजों की दरकार होती है। पहली चीज होती है नदी जैसी दानशीलता, दूसरी सूर्य जैसा स्नेह और तीसरा धरती जैसा आतिथि-सत्कार। कौन नहीं देखता और समझता कि नदी अपनी दानशीलता में, सूर्य अपने स्नेह में और धरती अपने सत्कार में जाति-पांति, धर्म-नस्ल और भाषा का भेद नहीं करते।'' वे आगे कहते हैं : ''दान, स्नेह और सत्कार के गुण होते हुए भी दीन और धर्म का अंतर लोगों के दिलों को एक दूसरे से अलग कर देता है। धर्म जोड़ने की जगह तोड़ने, मिलाने की जगह अलग करने लगता है।''

किन्तु पवित्र इनसानों का यह हाल नहीं होतां होता भी कैसे, क्योंकि मियां आपका हृदय मानवता के प्रति सहानुभूति से परिपूर्ण था। आपकी शिक्षा और प्रवचनों की विशेषता आध्यात्मिक मूल्यों की सुरक्षा, सहानुभूति और मानव-प्रेम था।

'जाकिर साहब की कहानी, उनकी बेटी की जुबानी', राधाकृष्ण प्रकाशन, से साभार ❑

गो नस्ल सुधार

❑ **राधाकृष्ण बजाज**

मुझे खुशी है कि भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद ने मेरी प्रार्थना स्वीकार करके गो नस्ल सुधार के इस प्रश्न पर विचार करने के लिए आप सबों को बुलाया। परिषद ने अपने नोट में विरोधी पक्ष की जितनी भी दलीलें हो सकती हैं, उन्हें देकर अच्छा किया है, जिससे सारी बातों पर विस्तार से विचार हो सकेगा।

संघ की बुनियादी बातें : इसके पहले कि मैं आपके सामने गो-सेवा संघ की विचारधारा रखूं, संघ की बुनियादी बातों का जिक्र कर देना अच्छा होगा। यह वसूल की बातें हैं, जिनके बारे में मुझे यकीन है कि हम सब सहमत होंगे।

1. गो जाति का सुधार स्थाई हो, ऐसी लंबे अर्से की नीति तय की जाय। यदि अस्थाई लाभ की कोई नीति सोची जाय तो यह स्थाई काम को किसी भी प्रकार हानि पहुंचाने वाली न हो।

2. देश को गो-वध चालू रखना है या बंद करना है, इसे तय करना राष्ट्र का, कानून सभा का काम है। हम विशेषज्ञों का काम तो उस नीति को सामने रखते हुए गो-सेवा के काम का विकास करना है। आज तो हमें यही मानकर चलना चाहिए कि इस देश में गोबर सदा चालू नहीं रह सकेगा।

3. शहर हो या देहात, दोनों की आवश्यकता अन्न और दूध इन दोनों की है। इसके अच्छे बैल और अधिक दूध पैदा करना आवश्यक है।

4. हमारे पास आज पशुओं की संख्या अधिक है, चारे पाने की जमीन कम है, पशु संख्या को न बढ़ाते हुए हमें आय से चौगुना दूध निर्माण करना है तथा बैलों की संख्या न बढ़ाते हुए बलवान बैल पैदा करने हैं।

5. खेती और गाय एक दूसरे के पोषक हैं। खेती के बिना गाय और गाय के बिना खेती नहीं पनप सकती है। जहां गाय है, वहां खेती फलेगी और जहां खेती है वहां गाय बढ़ेगी। इस तरह दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं, एक रूप हैं।

इन बुनियादी बातों के आधार पर संघ ने विचार किया कि किस तरह हमें पर्याप्त मात्रा में अन्न और दूध दोनों मिल सकते हैं। गाय को बिना मारे हम जी सकते हैं या नहीं? गाय और भैंस दोनों को स्थान है या किसी एक को ही? इन सब बातों पर संघ अर्थशास्त्र की दृष्टि से विचार किया है।

गाय का महत्त्व : हमारी खेती के लिए आज अधिकतर बैल ही काम में लाये जाते हैं। केवल तराई आदि स्थानों पर पाड़ों से खेत जोतते हैं। हमारे चाहने पर भी सारे देश में बैलों की जगह पाड़े काम नहीं दे सकते। ऐसी हालत में हमें बैल रखने ही होंगे और बैल के लिए गाय रहेगी ही। उस गाय को निर्वाह-खुराक देनी ही होती है। यदि उसकी जगह सुधार की जाय और दूध के लिए अधिक खुराक दी जा सके तो हमें दूध के लिए भी गाय ही अधिक लाभकारी हो सकेगी। हमारे बच्चों के स्वास्थ्य के लिए भी माता के दूध के बाद उससे मिलता गाय का ही दूध है। आंखों की ज्योति बढ़ाने वाले किरोटीन इसमें है। इन सब दृष्टियों से गाय हमारे लिए अनिवार्य है।

पशुओं की संख्या कम करके अधिक से अधिक आय जुटाने के लिए यह आवश्यक है कि अच्छे बैल और अधिक दूध देने वाले सर्वांगी पशु बढ़ाया जाय। इस दृष्टि से जहां खेती के लिए बैल काम आते हों वहीं गाय का विकास किया जाय और जहां पाड़े से खेती होती हो वहां भैंस का विकास किया जाय।

आज हमारे सारे देहातों में किसान को कहीं बाहर किसान की गाय के बदले दूसरी गाय लाकर नहीं दे सकते। इसलिए हमें किसान की अपनी जो भी गाय है, उसी का सुधार करना होगा। कुछ गायों में अधिक दूध बढ़ाने से देश के दूध का प्रश्न हल नहीं होगा। वह तो तभी हल होगा जब सारी गायों

में दूध, थोड़ा-थोड़ा भी क्यों न हो, बढ़ेगा। अतः स्थानीय गायों में ही दूध बढ़ाने का प्रयत्न करना होगा। पर प्रांत से गायें लाकर स्थानीय गायों का दूध घटने देने में देश की हानि है।

अब रही गाय को बचाने की बात। जिसका विचार हमें सांस्कृतिक दृष्टि से करना होगा। मनुष्य केवल अर्थ से ही नहीं जीता। भावनाओं का उसके जीवन में बड़ा स्थान है। उपयोगी पशुओं को बचाना तो अर्थशास्त्र का ही काम है। सवाल कम उपयोगी या बूढ़े पशुओं को बचाने का है, जिन पशुओं को बचाना अर्थशास्त्र की दृष्टि से लाभदायी नहीं है, इसे मैं पहले ही स्वीकार कर लेता हूं। लेकिन इनको बचाना ही है। यह मानकर अर्थशास्त्र में वह बैठाना है। उसके लिए आवश्यक है कि नस्ल सुधार करके कम अनुपयोगी पशुओं की पैदाइश ही बंद कर दी जाय और बूढ़े पशुओं को दूर जंगलों में, जहां कम-से-कम खर्चे में उनका पालन हो सकता हो, रख दिया जाय। उनकी खाल, चमड़े आदि का पूरा उपयोग किया जाय।

आक्षेप और उनके सुधार : संघ की विचार रखने के बाद कुछ जो आक्षेप किये गये हैं, उनका सुधार जरूरी है। ये आक्षेप निम्न प्रकार हैं :

1. अधिक दूध और अच्छे बैल, ये दोनों शक्तियां एक साथ नहीं बढ़ती, एक के बढ़ाने से दूसरी घटेगी।

2. सर्वांगी की कोई व्याख्या नहीं की जा सकती। हर प्रांत या क्षेत्र की आवश्यकताएं भिन्न-भिन्न हैं। इसलिए सर्वांगी की एक नीति कायम करना वस्तुस्थिति से आंख मूंदना है।

3. देहात और शहर की आवश्यकताएं अलग-अलग हैं। शहरों में दुधारू पशु ही चाहिए। कमजोर बैल कहीं-न-कहीं अपना रास्ता निकाल ही लेंगे।

4. प्रदर्शनी में आने वाले गोपालक, प्रदर्शनी देखने की अपेक्षा, अपने पशुओं की कीमत मिले, इसमें अधिक दिलचस्प होते हैं। ये हैं प्रश्न।

पहला, यह आक्षेप है कि बैल और दूध दोनों शक्तियों का विकास साथ नहीं हो सकता, एक के बढ़ाने से दूसरी घटेगी तो यह बात केवल अनुमान ही है, अनुभवसिद्ध नहीं। इससे देश का बहुत नुकसान हुआ है। सरआर्थर आल्वर ने इसपर कोई प्रयोग नहीं किये हैं। मांस और दूध, दोनों गुण साथ न चलने के अनुभव पर से बैल और दूध के गुण साथ न चलने का अनुमान लगाना ठीक नहीं। मि. विलियम स्मिथ ने, जो कि भारत के बड़े अनुभवी थे, बैल और दूध, दोनों को गुणों के साथ चलने में कोई दिक्कत नहीं बतायी, उल्टे दोनों एक दूसरे के पोषक बताये हैं। मैं शास्त्रज्ञ नहीं हूं, जिसका शास्त्रीय जवाब पूज्य सीताबाबू, श्री परमेश्वरी प्रसाद जी तथा विशेषज्ञ देंगे। लेकिन मैं इतना मानता हूं कि जब तक एक हरियाणा गाय का उदाहरण मेरे पास मौजूद है, जिसमें कि दूध और बैल की दोनों शक्तियां भरपूर हैं, तो मुझे निराश होने की कोई जरूरत नहीं। आज 10 साल के कबलाऊ जाति का दूध बढ़ाने का प्रयत्न हम कर रहे हैं। इसमें दूध के विकास के साथ बैल भी अधिक मजबूत हुए हैं। दूध के बढ़ने से बैल की शक्ति में कमी होने का कोई अनुभव नहीं आया।

दूसरा, अब सर्वांगी गाय की व्याख्या का प्रश्न लीजिए। सर्वांगी का मतलब यह नहीं है कि हर जगह एक ही तरह की गाय रखी जाय, हर प्रांत या हर क्षेत्र के लिए स्थानीय हवा-पानी और खुराक के अनुसार अलग-अलग नस्लें होंगी। लेकिन वे नस्लें ऐसी होंगी, जिनके बैल वहां की खेती की जो भी आवश्यकताएं होंगी, उन्हें पूरी कर सकेंगे। अर्थात् स्थानीय किसान जिनको जोतकर प्रसन्न हों, वैसे बैल और अधिक दूध देने वाली गायें पैदा करना ही सर्वांगी गाय का अर्थ है।

तीसरा, शहर की आवश्यकता अलग और देहात की अलग है। यह भी सही नहीं है। दोनों को ही दूध और अन्न चाहिए। और, अन्न पैदा करने के लिए बैल चाहिए। शहरों को देहात की मदद करनी चाहिए व देहातों को शहरों की। तभी देश आगे बढ़ सकता है। शहर वाले खराब नस्ल के बैल पैदा करके देहातों के मत्थे डालें और फिर कहें भी कि उन खराब बैलों को कहीं न कहीं स्थान मिल ही जायेगा, तो यह कहना ठीक नहीं है। आखिर पूरा देश हमारा है। वे बैल जहां भी रहेंगे, खायेंगे ज्यादा व काम देंगे कम। उनका बोझ हटाने का एक ही तरीका है, उनको मार डाला जाय, जो कि यहां संभव नहीं।

चौथा, पशु प्रदर्शनी का उद्देश्य शिक्षा का होना चाहिए। वहां से आम किसान को कुछ न कुछ ऐसी बात सीखने को मिलनी चाहिए, जिसका लाभ वह अपने देहात में जाकर उठा सके। अखिल भारतीय पशु प्रदर्शनी के द्वारा यह पता लगाना चाहिए कि देश में पशुपालन एवं उससे संबंधित खेती में क्या-क्या प्रगति हुई है। देश के सालभर के काम का चित्र वहां मिलना चाहिए। प्रदर्शनी से देश के अन्न उत्पादन व पशुपालन में बढ़ावा मिलना चाहिए। प्रदर्शनी को पशु बेचने का बाजार नहीं बनाना चाहिए।

आप से अपेक्षा : आप देश के पशु विशेषज्ञ हैं, देश को आपकी राय पर चलना है। स्वतंत्र भारत के गो-धन के आप निर्माता हैं, देश के पशुधन की तरक्की के आप ही आधार हैं। देश ने आप पर भरोसा करके यह काम आपके जिम्मे किया है, मैं कोई विशेषज्ञ नहीं हूं। न बहुत अनुभवी हूं, न अपने किसी विचार का आग्रही भी हूं। मैं तो केवल गो-जाति की तरक्की के लिए जिसके दिल में आग जल रही हो, ऐसा एक सामान्य भारतीय हूं। मेरी आपसे नम्र प्रार्थना है कि आप गंभीरता से सोचें और ऐसा ही मार्ग तय करें, जो निश्चित रूप से देश की तरक्की का हो। कोई विशेष प्रयोग करने हों तो वे छोटे दायरे में स्वतंत्र करें, उन्हें प्रकाश में लाने की जरूरत नहीं। अमल और प्रचार तो उन्हीं बातों का होना चाहिए, जिनको आम किसानों से भी करवाना हो, जो उसके लिए लाभदायी भी हो।

(मंत्री, अ.भा. गो-सेवा संघ, वर्धा द्वारा 10 नवंबर, 1949 को भारत सरकार द्वारा दिल्ली में बुलाई बैठक 'एनिमल ब्रीडिंग, कैटल एंड मिल्क कमेटी' की संयुक्त बैठक में भाषण) ❑

हिन्दू राष्ट्र, गाय व मुसलमान

❑ इरफान इंजीनियर

उच्च जातियों के हिन्दुओं और हिन्दू राष्ट्रवादी संगठनों का गाय के प्रति—एक पशु बतौर व हिन्दू राष्ट्र के प्रतीक बतौर—ढुलमुल रवैया रहा है। कभी वे गाय के प्रति बहुत श्रद्धावान हो जाते हैं तो कभी उनकी श्रद्धा अचानक अदृश्य हो जाती है। हाल के कुछ वर्षों में, हिन्दू राष्ट्रवादियों ने गाय को एक पवित्र प्रतीक के रूप में प्रस्तुत करना शुरू कर दिया है। और यह इसलिए नहीं कि सनातन धर्म की चमत्कृत कर देने वाली विविधता से परिपूर्ण धार्मिक-दार्शनिक ग्रंथ ऐसा कहते हैं, बल्कि इसलिए क्योंकि गाय, हिन्दुओं को लामबंद करने और मुसलमानों को खलनायक के रूप में प्रस्तुत करने के लिए अत्यंत उपयोगी है। ऐसा क्यों? क्योंकि मुसलमानों के गौमांस भक्षण पर कोई धार्मिक प्रतिबंध नहीं है और इस धर्म के मानने वालों का एक तबका मांस व मवेशियों के व्यापार में रत है। मुस्लिम शासकों और धार्मिक नेताओं का भी गाय के प्रति ढुलमुल रवैया रहा है। कभी उन्होंने हिन्दुओं के साथ शांतिपूर्ण सहअस्तित्व की खातिर गो-वध को प्रतिबंधित किया तो कभी अपने सांस्कृतिक अधिकारों और अपनी अलग पहचान पर जोर दिया।

दिल्ली विश्वविद्यालय के इतिहास के प्रोफेसर डीएन झा की पुस्तक 'द मिथ ऑफ होली काऊ' (पवित्र गाय का मिथक) कहती है कि प्राचीन भारत में न केवल गोमांस भक्षण आम था वरन् गाय की बलि भी दी जाती थी और कई अनुष्ठानों में गाय की बलि देना आवश्यक माना जाता था। कई ग्रंथों में इन्द्र भगवान द्वारा बलि दी गयी गायों का मांस खाने की चर्चा है। चूंकि उस समय समाज, घुमंतु से कृषि आधारित बन रहा था इसलिए मवेशियों का महत्त्व बढ़ता जा रहा था, विशेषकर बैलों और गायों का। मवेशी, संपत्ति के रूप में देखे जाने लगे थे जैसा कि 'गोधन' शब्द से जाहिर है। शायद इसलिए गाय की बलि पर प्रतिबंध लगाया गया और उस प्रतिबंध को प्रभावी बनाने के लिए उसे धार्मिक चोला पहना दिया गया। पांचवीं सदी ईसा पूर्व के बीच लिखे गये ब्राह्मण ग्रंथों, जो कि वेदों पर टीकाएं हैं, में पहली बार गाय को पूज्यनीय बताया गया है।

इसके बाद भारत में बौद्ध और जैन धर्मों का उदय हुआ और सम्राट अशोक ने सभी पशुओं के प्रति दयाभाव को अपने राज्य की नीति का अंग बनाया। यहां तक कि उन्होंने जानवरों की चिकित्सा का प्रबंध तक किया और उनकी बलि पर प्रतिबंध लगा दिया, यद्यपि यह प्रतिबंध मवेशियों पर लागू नहीं था। कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' में मवेशियों के वध को आम बताया गया है। इंडोनेशिया के बाली द्वीपसमूह के हिन्दू आज भी गौमांस खाते हैं। कुछ आदिवासी समुदायों में आज भी उत्सवों पर गाय की बलि चढ़ाई जाती है। कुछ दलित समुदायों को भी गौमांस से परहेज नहीं है। हिन्दुओं के गौमांस भक्षण पर पूर्ण प्रतिबंध, आठवीं सदी ई. में लगाया गया, जब आदि शंकराचार्य के अद्वैत वेदांत दर्शन का समाज में प्रभाव बढ़ा। बौद्ध धर्म-विरोधी प्रचार भी आठवीं सदी में अपने चरम पर पहुंचा, जब शंकर ने अपने मठों का ढांचा, बौद्ध संघों की तर्ज पर बनाया। ग्यारहवीं सदी तक उत्तर भारत में हिन्दू धर्म एक बार फिर छा गया, जैसा कि उस काल में रचित संस्कृत नाटक 'प्रबोधचन्द्रोदय' से स्पष्ट है। इस नाटक में बौद्ध और जैन धर्म की हार का रूपक और विष्णु की आराधना है। तब तक उत्तर भारत के अधिकांश रहवासी शैव, वैष्णव या शक्त बन गये थे। 12वीं सदी के आते-आते, बौद्ध धर्मावलंबी केवल बौद्ध मठों तक सीमित रह गये और आगे चलकर, यद्यपि बौद्ध धर्म ने भारत के कृषक वर्ग के एक तबके को अपने प्रभाव में लिया, तथापि, तब तक बौद्ध धर्म एक विशिष्ट धार्मिक समुदाय के रूप में अपनी पहचान खो चुका था। वैष्णव, पशुबलि के विरोधी और शाकाहारी थे।

मुसलमानों का ढुलमुल रवैया : मुस्लिम शासक और धार्मिक नेता, वर्चस्वशाली उच्च जाति के हिन्दुओं की भावनाओं का आदर करने और अपने सांस्कृतिक अधिकारों पर जोर देने के बीच झूलते रहे। मुगल बादशाह बाबर ने गौवध पर प्रतिबंध लगाया था और अपनी वसीयत में अपने पुत्र हुमायूं से भी इस प्रतिबंध को जारी रखने को कहा था। कम से कम तीन अन्य मुगल बादशाहों—अकबर, जहांगीर और अहमद शाह—ने भी गौवध प्रतिबंधित किया था। मैसूर के नवाब हैदरअली के राज्य में गौवध करने वाले के हाथ काट दिये जाते थे। असहयोग और खिलाफत आंदोलनों के दौरान गौवध लगभग बंद हो गया था क्योंकि कई मुस्लिम धार्मिक नेताओं ने इस आशय के फतवे जारी किये थे और अली बंधुओं ने गौमांस भक्षण के विरुद्ध अभियान चलाया था। महात्मा गांधी ने हिन्दुओं से खिलाफत आंदोलन का समर्थन करने की जो अपील की थी, उसके पीछे एक कारण यह भी था कि इसके बदले मुसलमान नेता गौमांस भक्षण के विरुद्ध गया। मुस्लिम धार्मिक नेताओं ने इस अहसान का बदला चुकाया और गौवध के खिलाफ अभियान शुरू किया। इससे देश में अभूतपूर्व हिन्दू-मुस्लिम एकता स्थापित हुई और पूरे देश ने एक होकर अहिंसक रास्ते से ब्रिटिश साम्राज्य के खिलाफ मोर्चा संभाला।

हाल में कई राज्यों द्वारा गौवध पर प्रतिबंध लगाने संबंधी कानून बनाये गये हैं। इनका विरोध गौमांस व्यापारी या मांस उद्योग के श्रमिक कर रहे हैं। इनमें मुख्यतः कुरैशी मुसलमान हैं, परंतु हिन्दू खटीक व अन्य गैर-मुसलमान भी यह व्यवसाय करते हैं। वे

प्रतिबंध का विरोध मुख्यतः इसलिए कर रहे हैं क्योंकि इससे उनके व्यावसायिक हितों को नुकसान पहुंचेगा। फिक्की और सीआईआई यह चाहते हैं कि उद्योगों और व्यवसायों पर सरकार का नियंत्रण कम से कम हो। अगर ये छोटे व्यवसायी भी ऐसा ही चाहते हैं तो इसमें गलत क्या है? और यहां इस तथ्य को नहीं भुलाया जाना चाहिए कि मांस के व्यवसायियों में हिन्दू और मुसलमान दोनों शामिल हैं परंतु मीडिया केवल मुसलमानों के विरोध को महत्त्व दे रहा है और गैर-मुसलमानों द्वारा किये जा रहे विरोध का अपेक्षित प्रचार नहीं हो रहा है। गौवध पर प्रतिबंध और गौमांस के व्यवसाय के विनियमन को कई आधारों पर चुनौती दी जाती रही है, जिनमें से एक है संविधान के अनुच्छेद 19(1) द्वारा हर नागरिक को प्रदत्त कोई भी वृत्ति, उपजीविका, व्यापार या कारोबार करने का मौलिक अधिकार। इसके अतिरिक्त, अनुच्छेद 25, जो कि सभी नागरिकों को किसी भी धर्म को मानने और उसका आचरण करने की स्वतंत्रता देता है, के आधार पर भी इस प्रतिबंध को अनुचित बताया जाता रहा है। उच्चतम न्यायालय ने इस प्रतिबंध को इस आधार पर उचित ठहराया है कि यह जनहित (दुधारू व भारवाही पशुओं और पशुधन का संरक्षण) में है और यह व्यवसाय करने की स्वतंत्रता पर अनुचित प्रतिबंध नहीं है। धार्मिक स्वतंत्रता के अधिकार के उल्लंघन के आधार पर चुनौती को यह कहकर खारिज कर दिया गया कि यद्यपि इस्लाम में गौमांस भक्षण की इजाजत है तथा मुसलमानों के लिए गौमांस भक्षण अनिवार्य नहीं है।

गौवध संबंधी पुराने कानूनों का चरित्र मुख्यतः नियामक था और उनमें गौवध पर पूर्ण प्रतिबंध नहीं लगाया था। इन कानूनों में गायों और दोनों लिंगों के बछड़ों के वध को प्रतिबंधित किया गया था परंतु राज्य सरकार द्वारा नियुक्त प्राधिकृत अधिकारी की इजाजत से, एक निश्चित आयु से ज्यादा के पशुओं का वध किया जा सकता था। इन कानूनों को शाकाहार—समर्थक नागरिकों ने इस आधार पर चुनौती दी थी कि वे राज्य के नीति निदेशक तत्त्वों में से एक, जिसमें 'गायों, बछड़ों व अन्य दुधारू व भारवाही पशुओं के वध पर प्रतिबंध' लगाये जाने की बात कही गयी है, का उल्लंघन है। उच्चतम न्यायालय ने मोहम्मद हमीद कुरैशी विरुद्ध बिहार राज्य प्रकरण में इस तर्क को इस आधार पर खारिज कर दिया कि एक निश्चित आयु के बाद, गौवंश की भारवाही पशु के रूप में उपयोगिता समाप्त हो जाती है और वे सीमित मात्रा में उपलब्ध चारे पर बोझ बन जाते हैं। अगर ये अनुपयोगी जानवर न रहें तो वह चारा दुधारू व भारवाही पशुओं को उपलब्ध हो सकता है। राज्यों ने अनुपयोगी हो चुके गोवंश के संरक्षण के लिए जो गौसदन बनाये थे, वे घर अपर्याप्त थे। इस संबंध में दस्तावेजी सुबूतों के आधार पर न्यायालय ने कहा कि गौवध पर पूर्ण प्रतिबंध उचित नहीं ठहराया जा सकता और वह जनहित में नहीं है।

परंतु दूसरे दौर के गौवध-निषेध कानूनों में गौवध पर प्रतिबंध तो लगाया ही गया साथ ही, गौमांस खरीदने व उसका भक्षण करने वालों के लिए भी सजा का प्रावधान कर दिया गया। इस संबंध में मध्य प्रदेश सरकार द्वारा बनाया गया कानून तो यहां तक कहता है कि गौमांस भंडारण करने व उसे पकाने के लिए इस्तेमाल किये जाने वाले सामान, जिनमें फ्रिज और बर्तन तक शामिल है, को भी जब्त किया जा सकता है। अर्थात अब पुलिस वाला हमारे रसोईघर में घुस सकता है और अगर यहां गौमांस पाया गया या उसके भंडारण या पकाने का इंतजाम मिला, तो हमें जेल की सलाखों के पीछे सात साल काटने पड़ सकते हैं।

गौवध व हिन्दू राष्ट्रवादी संगठन : गौवध के संबंध में जिस तरह का ढुलमुल रवैया हिन्दू व मुस्लिम धार्मिक व राजनैतिक नेताओं का था, कुछ वैसा ही हिन्दू राष्ट्रवादी संगठनों का भी रहा है। हिन्दुत्व चिन्तक वी. डी. सावरकर ने गाय को श्रद्धा का पात्र बनाने का विरोध किया था। उनका कहना था कि गाय एक पशु है, हमें उसके प्रति मानवीय दृष्टिकोण अपनाना चाहिए और हिन्दुओं को करुणा व दयावश उसकी रक्षा करनी चाहिए। परंतु उनके लिए गाय किसी भी अन्य पशु के समान थी—न कम न ज्यादा। वे लिखते हैं, 'गाय और भैंस जैसे पशु और पीपल व बरगद जैसे वृक्ष, मानव के लिए उपयोगी हैं, इसलिए हम उन्हें पसंद करते हैं और यहां तक कि हम उन्हें पूजा करने के काबिल मानते हैं और उनकी रक्षा करना हमारा कर्तव्य है परंतु केवल इसी अर्थ में। क्या इसका यह अर्थ नहीं है कि अगर किन्हीं परिस्थितियों में, वह जानवर या वृक्ष मानवता के लिए समस्या का स्रोत बन जाये तब वह संरक्षण के काबिल नहीं रहेगा और उसे नष्ट करना, मानव व राष्ट्र हित में होगा और तब वह मानवीय व राष्ट्र धर्म बन जायेगा (समाज चित्र, समग्र सावरकर वांगमय, खंड 2, पृ. 678)। सावरकर आगे लिखते हैं—''कोई भी खाद्य पदार्थ इसलिए खाने योग्य होता है क्योंकि वह हमारे लिए लाभदायक होता है परंतु किसी खाद्य पदार्थ को धर्म से जोड़ना, उसे ईश्वरीय दर्जा देना है। इस तरह की अंधविश्वासी मानसिकता से देश की बौद्धिकता नष्ट होती है' (1935, सावरकारांच्या गोष्ठी, समग्र सावरकर वां., खंड 2, पृ.559)। '...जब गाय से मानवीय हितों की पूर्ति न होती हो या उससे मानवता शर्मसार होती हो, तब अतिवादी गौसंरक्षण को खारिज कर दिया जाना चाहिए...' (वही, पृ. 341)। 'मैंने गाय की पूजा से जुड़े झूठे विचारों की निंदा इसलिए की ताकि गेहूं को भूंसे से अलग किया जा सके और गाय का संरक्षण बेहतर ढंग से हो सके' (1938, स्वातंत्र्य वीर सावरकर, हिन्दू महासभा पर्व, पृ. 143)।

खिलाफत आंदोलन के दौरान, जब मुसलमानों ने गौमांस भक्षण बंद कर दिया और गौवध का विरोध करने लगे तब

सावरकर और हिन्दू राष्ट्रवादियों के लिए गाय वह मुद्दा न रही जिसकी इस्तेमाल हिन्दुओं को एक करने और मुसलमानों को 'दूसरा' या 'अलग' बताने के लिए किया जा सके। परंतु सावरकर हिन्दुओं द्वारा गाय की पूजा करने का विरोध एक अन्य कारण से भी कर रहे थे। सावरकर लिखते हैं, ''जिस वस्तु की हम पूजा करें, वह हमसे बेहतर व महान होनी चाहिए। उसी तरह, राष्ट्र का प्रतीक, राष्ट्र की वीरता, मेधा और महत्त्वाकांक्षा को जागृत करने वाला होना चाहिए और उसमें देश के निवासियों को महामानव बनाने की क्षमता होनी चाहिए। परंतु गाय, जिसका मनमाना शोषण होता है और जिसे लोग जब चाहे मारकर खा लेते हैं, वह तो हमारी वर्तमान कमजोर स्थिति का एकदम उपयुक्त प्रतीक है। पर कम से कम कल के हिन्दू राष्ट्र के निवासियों का तो ऐसा शर्मनाक प्रतीक नहीं होना चाहिए'' (1938, क्ष-किरण, समग्र सावरकर वांगमय, खंड 3, पृ. 237)। 'हिन्दुत्व का प्रतीक गाय नहीं बल्कि नृसिंह है। ईश्वर के गुण उसके आराधक में आ जाते हैं। गाय को ईश्वरीय मानकर उसकी पूजा करने से संपूर्ण हिन्दू राष्ट्र गाय जैसा दब्बू बन जायेगा, वह घास खाने लगेगा। अगर हमें अपने राष्ट्र से किसी पशु को जोड़ना ही है तो वह पशु सिंह होना चाहिए। एक लंबी छलांग लगाकर सिंह अपने पैने पंजों से जंगली हाथियों के सिर को चीर डालता है। हमें ऐसे नृसिंह की पूजा करनी चाहिए। नृसिंह के पैने पंजे न कि गाय के खुर, हिन्दुत्व की निशानी हैं, (1935, क्ष-किरण, समग्र सावरकर वांगमय, खंड 3, पृ. 167)। सावरकर की मान्यता थी कि हिन्दुओं द्वारा गाय की पूजा करने से वे जरूरत से ज्यादा विनम्र, दयालु व सभी प्राणियों को समान मानने वाले बन जायेंगे। जबकि सावरकर तो राष्ट्रवाद का हिन्दूकरण और हिन्दुओं का सैन्यीकरण करना चाहते थे। ❑

इस्लाम में पशु-प्रेम

❑ मेनका गांधी

डॉ. क्रिस्टन स्टिल्ट मिस्र स्थित इस्लामी विषयों के विद्वान हैं। अपनी भारत यात्रा के दौरान वह मुझसे मिलने आयीं। उन्होंने इस्लाम और पशुओं पर एक किताब लिखी है, जिसे शरिया के प्रोफेसर और अल अजहा यूनिवर्सिटी में काउंसिल ऑफ इस्लामिक रिसर्च के सदस्य डॉ. प्रो. अब्द अल्लाह मबरूक अलनजर ने अनुमोदित किया है।

स्टिल्ट लिखती हैं, इस्लामी कानूनों के अध्ययन के दौरान पशुओं के प्रति मनुष्य को दयाल होने की जरूरत पर बल देने वाले नियमों ने मुझे प्रभावित किया है। ये नियम व्यापक हैं और घोड़े एवं गधे, जैसे कामगार पशुओं की सुरक्षा सुनिश्चित करते हैं। पशुवध को जितना संभव हो सके, दयालु तरीके से करने की बात कहते हैं और कुत्ते-बिल्लियों से स्नेहपूर्ण ढंग से पेश आने का निर्देश देते हैं। इस्लाम दयालुता, कृपा, संवेदना, न्याय और सद्कार्य करने के सिद्धांतों पर आधारित है। ये सिद्धांत कुरान, हदीस और इस्लामी इतिहास में दिखाई देते हैं। पैगंबर मोहम्मद सभी जीवों के प्रति दयालु और संवेदनशील थे। इब्न मसूद ने लिखा है : हम सब पैगंबर के साथ सफर कर रहे थे। हमें एक छोटी-सी चिड़िया और उसके दो बच्चे दिखायी पड़े, तो हममें से किसी ने उन बच्चों को उठा लिया। अब बच्चों की मां पैगंबर के सिर पर मंडराने लगी। पैगंबर यह देखकर हमारे सामने आये और कहने लगे, किसने बच्चों को छीनकर इस छोटी-सी चिड़िया को परेशानी में डाला है? बच्चे उन्हें लौटा दो। जब पैगंबर ने दया के महत्त्व की व्याख्या की, तो बच्चे उसकी मां को लौटा दिये गये।

कुरान और हदीस में जानवरों के प्रति क्रूरता की निन्दा करते हुए सजा का प्रावधान किया गया है। ज्यादातर हदीसों में कहा गया है : जानवरों के साथ बदसुलूकी करने वालों को पैगंबर कोसते हैं। कोसने का मतलब है कि पशुओं के साथ दुर्व्यवहार प्रतिबंधित है। जो जीवित प्राणियों के साथ कठोर व्यवहार करता है और नहीं पछताता, फैसले के दिन अल्लाह भी उसके साथ वैसा सुलूक करता है, पैगंबर के मुताबिक एक औरत को मरने के बाद सिर्फ इसलिए नरक में जाना पड़ा, क्योंकि उनके एक दिल्ली को कैद करके रखा था और उसे खाना नहीं दिया, न ही उसे कुछ खाने की इजाजत दी। पशुओं के प्रति करुणा इस्लामी कानून, इतिहास और संस्कृति का एक मूलभूत हिस्सा है। पशु कल्याण संगठन और पशुशालाएं सबसे पहले मुस्लिमों ने ही स्थापित कीं। हजारों साल पहले कैरो जैसे फलते-फूलते शहर में ऐसे अनेक आश्रयस्थल थे, जो पशुओं की जरूरतें पूरी करते थे। मिस्र के मुस्लिमों ने स्कूलों और मस्जिदों के बगल में नहर तो बना ही रखे थे, ताकि पशु अपनी प्यास बुझा सकें, उन्होंने ऐसे ट्रस्ट भी स्थापित किये थे, जो पालतू और आवारा पशुओं की समुचित देखभाल कर सकें। मरते वक्त लोग कुछ पैसे इसलिए भी छोड़ जाते थे, ताकि उनकी स्मृति में नहर खोदे जायें। सुल्तान अल जहीर बेवर ने आवारा बिल्लियों के भोजन के लिए एक संस्था स्थापित कर रखी थी, तो मिस्र के ऑटोमन अमीर ने पालतू कुत्ते-बिल्लियों के लिए ऐसी व्यवस्था की थी। कई हदीस कहते हैं कि मनुष्य को गधों, घोड़ों और ऊंटों के साथ अच्छा व्यवहार करना चाहिए। पैगंबर ने कहा था—घोड़े को भोजन या पानी मुहैया कराने वाला इनसान का हकदार है। ❑

बा-बापू : 150वीं जयंती पर विशेष

'बा' भारत वापसी

❑ गिरिराज किशोर

गांधीजी को लेकर एक बड़ा और चर्चित उपन्यास प्रस्तुत कर चुके श्री गिरिराज किशोर ने अब बा पर कलम उठायी है। बा पर कुछ भी लिखना बहुत कठिन था। नहीं के बराबर जानकारियां। 'पहला गिरमिटिया' की सामग्री जुटाने में उन्हें कोई दो हजार पुस्तकों से मदद मिली थी। और 'बा' उपन्यास लिखते समय मुश्किल से दो पुस्तकें सामने थीं। वे उन सब लोगों से मिले, जिन्हें कस्तूरबा के बारे में थोड़ी-सी भी जानकारी थी और उन जगहों पर गये, जहां बा ने थोड़ा या बहुत समय बिताया था। इस तरह बनी यह कथा, यह इतिहास बा के अलावा खुद बापू के दो और रूपों को भी सामने रखता है–पति और पिता का रूप। प्रस्तुत है 'बा' का एक अंश, जो बा-बापू : 150 के अवसर पर क्रमशः प्रकाशित हो रहे हैं। –सं.

बापू ने नाड़ियाड़, जिला खेड़ा से पत्र लिखा :

प्यारी कस्तूर,

मैं समझ रहा हूं, तुम मेरा साथ चाहती हो। हमें अपना काम करते रहना चाहिए इसलिए जहां तुम हो तुम्हारा वहीं बने रहना उचित है। अगर आश्रम के बच्चों को अपने बच्चे समझोगी तो अपनों को याद नहीं करोगी। जैसे ही तुम दूसरों को भी उसी तरह प्यार और उनकी सेवा करना सीख जाओगी, तुम अनुभव करोगी आनंद तुम्हारे अंदर उफन रहा है...

दो दिन बाद दूसरा पत्र आया, जिसमें

सांत्वना देने की कमजोर सी कोशिश की थी—

प्रिय कस्तूर,

तुम्हारी उदासी मुझे दुःखी कर देती है। अगर महिलाओं को साथ ले जाना संभव होता तो मैं तुम्हें अवश्य साथ लाता...क्या हमने अभी तक विछोह में आनंद खोजना नहीं सीखा? ईश्वर ने चाहा तो हम जल्दी मिलेंगे...

यह पत्र चोट को सहलाना मात्र था।

इन दोनों पत्रों का एक निहित अर्थ भी है जो एक और दृष्टि से भी समझा जा सकता है। पति द्वारा 'प्यारी' संबोधित किया जाना और साथ यह लिखना 'मैं जानता हूं तुम मेरा साथ चाहती हो', कहीं न कहीं इस वाक्य में शायद यह भी छिपा है कि मैं भी तुम्हारा साथ चाहता हूं। बापू ने कस्तूरबा को यह कहकर चेताया था कि 'जैसे ही तुम दूसरों को उसी तरह प्यार करना और उनकी सेवा करना सीख जाओगी, तुम अनुभव करोगी आनंद तुम्हारे दिल में उफन रहा है।' वह समझ रही थी कि वे यह बात अपने से भी कह रहे हैं। 'क्या हमने अभी तक विछोह में आनंद खोजना नहीं सीखा?' यह सवाल उसके लिए ही नहीं, उनके अपने लिए भी है। 'ईश्वर ने चाहा तो जल्दी मिलेंगी।' यह बताता है कि उनके अंदर प्रेम का धागा कमजोर नहीं हुआ है। उस गर्मी के मौसम में वे भी अवसाद से उतने ही ग्रस्त हैं जितनी वह स्वयं है। कई बार इनसान अपने मन की बात सीधे न कहकर प्रकारांतर से कहता है। बापू भी बा के पास पहुंचकर राहत चाहते थे।

अगस्त के महीने में बापू साबरमती आश्रम पहुंचे थे। बा उन्हें उस हालत में देखकर सहम गयी। वह उनके लिए चिन्तित तो थी ही, जैसे अंतःप्रेरणा हो गयी थी कि बापू परेशानी में हैं। वे मरियल से, अधभूखे, ढांचा भर रह गये थे। पहली बार ऐसा हुआ था। दक्षिण अफ्रीका में महीनों बाद जेल से छूटकर आने पर भी ऐसा नहीं होता था। बा के पूछने पर उन्होंने बताया कि पेचिश हो जाने के कारण उपवास रखा था। बा ने उनके लिए उनकी पसंद का खाना, एक कटोरा मूंग की दाल और गेहूं का दलिया बनाया। बापू ने शौक से ही नहीं खाया बल्कि दोबारा भी लिया। बा सहज हो गयी। कुछ दिन आश्रम में रहने का आग्रह किया। चूंकि उन्हें भर्ती के लिए नाडियाड पहुंचना था, वह रात ही को लौट गये। कस्तूरबा को अच्छा नहीं लगा। अंदर ही अंदर परेशानी बढ़ रही थी। वहां जाकर बापू और बीमार हो गये। वह उनके जीवन की सबसे लंबी और कठिन बीमारी थी। पेचिश ने गंभीर रूप ले लिया था। कभी सरसाम में कुछ-कुछ बोलने लगते थे। चल फिर नहीं पा रहे थे। बोलने में भी परेशानी होती थी। उनको लग रहा था अब अंत आ गया।

नाडियाड़ से बापू के बारे में जो समाचार मिल रहे थे, उन्हें सुनकर बा की चिन्ता बढ़ जाती थी। वह क्या करे? बापू ने दवाएं लेने के लिए बिल्कुल मना कर दिया था। पोषण के लिए भी कुछ नहीं ले रहे थे। खेड़ा में कोई ऐसा व्यक्ति नहीं था जो उनकी ठीक तरह देखभाल कर सके। बा उनको आश्रम लाना चाहती थी पर हालत ऐसी नहीं थी कि रेल द्वारा वहां लाया जा सके। अंबालाल साराभाई ने एक बार फिर इस कठिन समस्या का समाधान कर दिया। वे अपनी सफारी कार से नाड़ियाड़ गये और बापू को लेकर अहमदाबाद आ गये, जिससे शांति के साथ उनका इलाज और देखभाल हो सके। आश्रम में व्यस्तता रहती थी। सबकी राय यही थी, ऐसे स्वास्थ्य के साथ बापू का आश्रम में रहना उचित नहीं होगा। साराभाई परिवार ने सबसे बेहतर इलाज का प्रबंध कर दिया था। बा रोज बापू को देखने जाती थी और उन्हें दवा लेने और ठीक से खाना खाने के लिए प्रोत्साहित करती थी। बापू का स्वास्थ्य धीरे-धीरे सुधर रहा था। जब बापू ने आश्रम लौटने को कहा तो सबको आशा बंधी कि बापू जल्दी स्वस्थ हो जायेंगे पर उनके

एक निराशा भरे वाक्य से चारों तरफ सन्नाटा भर गया, 'मैं अपेन आश्रम में ही मरना चाहता हूं।' बा की आंखें भर आयीं पर उन्होंने प्रकट नहीं होने दिया कि उनके दिल पर क्या गुजर रही है।

1918 में इन्फ्लुएन्ज़ा विश्व-भर में महामारी की तरह फैला था। लाखों लोग मरे थे। दस महीने संसार-भर में मौत घर-घर नाची थी। अकेले अमेरिका में ही साढ़े पांच लाख लोग इस महामारी का शिकार हो गये थे। दुनिया-भर में बीस करोड़ लोग बलि चढ़े थे। भारत में सबसे ज्यादा लोग मौत का शिकार हुए थे। जब संसार इस आपत्ति से जूझ रहा था तो गांधी परिवार भी इन्फ्लुएन्ज़ा की चपेट में आने से बच नहीं सका। अक्टूबर का महीना था, गुलाबी ठंड पड़ने लगी थी। कस्तूरबा को तार मिला, गुलाब का चौथा बेटा शांतिलाल नहीं रहा। गुलाब की इच्छा थी कि अंतिम संस्कार बा के सामने हो। हरिलाल कलकत्ता से राजकोट आ रहा था। बा अगले दिन ही चल दी। जब राजकोट पहुंची तो घर में एन्फ्लुएन्ज़ा का एक और मरीज तैयार था। बा की सबसे प्यारी बहू गुलाब चपेट में आ चुकी थी। बा अपने आपको संभाले रखकर गुलाब की हिम्मत बढ़ाने की कोशिश करती रही। लेकिन सालों से पोषणविहीन जीवन बिताने और एक के बाद एक गर्भाधान के कारण गुलाब हार गयी। 18 अक्टूबर का दिन था, जो गुलाब कभी गांधी परिवार के आंगन में खिला था, देखते-देखते झर गया। बा और रामी ही उस समय गुलाब के पास थे। रामी अपनी बा का हाथ इस तरह पकड़े थी जैसे वह उसे रोक लेगी। गुलाब ने पहले बा की तरफ देखा फिर रामी की, जैसे कह रही हो रामी तुम्हारे सुपुर्द...बा। फिर शांत हो गयी।

विक्षिप्त-सा हरिलाल, मासूम बच्चे, गुलाब की विधवा मां और बा ने अटल सत्य को झुठलाने की कोशिश की, जैसा मृत्यु के साथ अक्सर होता है। लेकिन जो सामने सत्य था उसे कैसे और कब तक नकारा जा सकता था?

हरिलाल जब उजड़ी दुनिया में अपनी जगह बनाने की कोशिश कर रहा था तो अस्वस्थ बापू का महादेव भाई के हाथ से लिखा पत्र आया। हरिलाल ने बा को पढ़कर सुनाया। बा सुनकर चुप रह गयी। पत्र में लिखा था :

'एक बात में ही मुझे खुशी मिलती है सदा ऐसे काम में लगे रहो जो अत्यधिक पवित्र हो।...सच्चा सुख उसी को मिलता है, जो उसे समझे और उसके अनुरूप जिये। अगर यह त्रासदी तुम्हें उस मानसिकता में ले जाये, तब वह सुख तुम्हारा अपना होगा, तब वह हमारे लिए स्वागत योग्य होगी।'

पत्र सुनाते-सुनाते हरिलाल की आंख से आंसू टपक गया। बा दूसरी तरफ देख रही थी।

पहले की तरह, बापू का, दूसरा पत्र आया, उसमें आपसी समझौते का प्रस्ताव था :

'अहंकार की मानसिकता में प्रार्थना का कोई अर्थ नहीं होता। पर उसके सामने असहाय होकर मैं बिस्तर पर पड़ा हूं, मैं अपने दिमाग की अनुपयुक्तता के लिए शर्मिंदा हूं। मैं हताशा में डूब जाता हूं तो अपने शरीर के नष्ट होने की कामना करता हूं। मैं अपने अनुभव का पूरा लाभ तुम्हें दूंगा। मैं तुम्हारा सच्चा दोस्त हूं। इससे क्या अंतर पड़ता है और तुम्हारी किसी योजना पर हमारे बीच मतभेद हो? हम शांति से बातचीत कर सकते हैं।'

पत्र में बा को बापू की एक बार सहायता के लिए पुकार सुनायी पड़ी।

बा ने हरि से कहा, 'तेहरवीं के बाद मैं बच्चों के भविष्य के बारे में कुछ सख्त फैसले लेने में तुम्हारी मदद करना चाहती हूं। मैं तुम्हारे बच्चों का लालन-पालन करूंगी, जब तक वे मेरे पास रहेंगे वही उनका घर होगा।' बा जान रही थी, अकेले हरि के लिए उन्हें संभालना कठिन होगा। गुलाब की विधवा मां और बहनों पर भी उनकी बिसात से ज्यादा भार पड़ जायेगा। वह स्वयं राजकोट में रहने की स्थिति में नहीं थी। साबरमती आश्रम में—बापू बीमार हैं, उन्हें बा की जरूरत है।

कस्तूरबा के मन में बापू को लेकर जो आशंका पनप रही थी और उनके पत्रों से भी लगा था, वह एक बार फिर सच साबित हुई। आश्रम पहुंचकर देखा बापू पहले कभी इतने निराश नहीं हुए थे। वे बिस्तर से लग गये थे, भूख बंद हो गयी थी। बा को बताया गया कि पेचिश के लंबे समय तक चलते रहने के कारण गुदा में जख्म हो गया है। उसमें असहनीय दर्द है। उन्होंने डॉक्टरी इलाज को भी स्वीकार कर लिया था। पर एक डॉक्टर ने सलाह दी, उनके शरीर को बर्फ से ढक दो। दूसरे डॉक्टर ने आर्सेनिक और स्टिशनिन के इंजेक्शन देने के लिए कहा। बापू उसके लिए तैयार नहीं हुए। वे बोले, ये डॉक्टर भी मेरी तरह ही झोलाछाप हैं, मैं किसी का इलाज नहीं करूंगा। उन्होंने जीने की आशा त्याग दी। सब आश्रमवासियों को बुलाया और अपना ही तबर्रा (निंदा-पाठ) पढ़ा। 'मैंने योजनाओं को अधबीच में छोड़ देने के लिए ही आरंभ किया था। अब मेरे जाने का वक्त आ गया। अगर ईश्वर की यही इच्छा है, तो हो।'

कस्तूर के आश्रम पहुंचने के एक सप्ताह बाद ही वल्लभभाई पटेल खबर लेकर आये कि जर्मनी ने मित्र सेनाओं के सामने समर्पण कर दिया। विश्वयुद्ध समाप्त हो गया अतः बर्तानिया सरकार ने घोषणा की कि अब भारतीय रंगरूटों की आवश्यकता नहीं रही। कस्तूरबा इस समाचार से बहुत प्रसन्न हुई। इस युद्ध की समाप्ति से बापू की चिन्ता और संताप भी समाप्त हो जायेगा। जल्दी स्वास्थ्य लाभ होगा। बापू के लिए यह समाचार बहुत सरोकार की बात होती पर उन्होंने उसे तटस्थ भाव से लिया। आश्रम के संवासी और मित्र समझ रहे थे कि बा की सेवा से बापू की तकलीफ कम होगी और उन्हें अपनी मृत्यु के बारे में सोचने से निजात मिलेगी। पर बापू ने बा की उपस्थिति में ही उसके सरोकारों को खारिज कर दिया। बा यद्यपि उनके बारे में चिन्तित रहती थी। बा के बारे में वे अपना विचार महादेव भाई के सिवाय किसी के सामने प्रकट नहीं करते थे। महादेव सुनते रहते थे और सावधानी के साथ नोट्स लेते रहते थे। बापू ने एक दिन चौंकाने वाली शिकायत की कि 'मैं बा का चेहरा नहीं देख सकता।' उन्होंने बा के चेहरे की समानता निरीह गाय के चेहरे से की और कहा कि उसकी पीड़ा में निस्वार्थ वेदना छिपी है। उन्होंने यह भी माना कि उसकी सहजता और सरलता मुझे जकड़ लेती है और हर मायने में सहज कर देती है।

...क्रमशः अगले अंक में

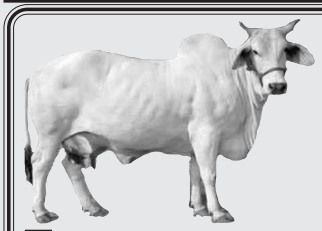

उर्दू कविता : गाय की महिमा

रब का शुक्र अदा कर भाई

❑ इस्माइल मेरठी

रब का शुक्र
अदा कर भाई
जिसने
हमारी गाय बनाई
उस मालिक को
क्यों न पुकारे
जिसने पिलाये
दूध की धारें
खाक को
उसने सब्ज बनाया
सब्ज को फिर
इस गाय ने खाया
कल जो घास
चरी थी वन में
दूध बनी वो
गाय के थन में
सुभान अल्लाह
दूध है कैसा
ताजा, गरम,
सफेद और मीठा
दूध में भींगी
रोटी मेरी
उसके करम ने
बख्शी सेहरी

दूध, दही
और
मट्ठा मसका
दे ना खुदा तो
किसके वश का
गाय को दी क्या
अच्छी सूरत
खूबी की हैं
गोया मूरत
दाना, दुनका,
भूसी, चोकर
खा लेती है
सब खुश होकर
खाकर तिनके
और ठठेरे
दूध है देती
शाम-सबेरे
क्या गरीब और
कैसी प्यारी
सुबह हुई
जंगल को सिधारी
सब्ज से
ये मैदान हरा है
झील में पानी

साफ भरा है
पानी मौजे
मार रहा है
चरवाहा
पुचकार रहा है
पानी पीकर,
चारा चरकर
शाम को आयी
अपने घर पर
दोरि में जो
दिन है काटा
बच्चे को किस
प्यार से चाटा
गाय हमारे
हक में नेमत
दूध है देती
खा के वनस्पत
बछड़े इसके
बैल बनायें
जो खेती के
काम में आयें
रब की
हम्द-ओ-सना कर भाई
जिसने ऐसी गाय बनाई। ❑

सर्व सेवा संघ (स्वत्वाधिकारी) के लिए महामंत्री, शेख हुसैन द्वारा सर्व सेवा संघ परिसर, राजघाट, वाराणसी (उ.प्र.) 221001 से प्रकाशित तथा महावीर प्रेस, भेलूपुर, वाराणसी से मुद्रित। संपादक : अशोक मोती।